जय सदगुरुदेव निखिलेश्वर

तारा हे सारा जमाना गुरुवार हमको भी तारो

परम पूज्य सदगुरुदेव निखिल के श्री चरणों में कोटि कोटि नमन

(3-4 /7/1998 को सिध्दाश्रम जाने के पहले जो कहा हे)
मैं यही हूँ आप के बीच जब तक आप प्रहार करने की कला नहीं सीखते तब तक इस समाज में व्याप्त ढोंग और पाखण्ड पर प्रहार कर सको .और आपने जीवन को गुरुमाय बना सको, कुछ कागज के नोटों को कमाना, कुछ कंकड़-पत्थर को जमा करना उन्होंने अपने शिष्यों को नहीं सिखाया. अपितु उन्होंने अपने शिष्यों को उत्तराधिकार में दिया : "प्रहार करने की कला - ताकि वे इस समाज में व्याप्त ढोंग और पाखण्ड पर प्रहार कर सके....... ..... और दे सके प्रेम, ताकि वे दग्ध हृदयों पर फुहार बनकर बरस सके, जलते हुए दिलों का मरहम बन सके, बिलखते हुए आंसुओं की हंसी बन सकें, छटपटाते हुए प्राणों की संजीवनी बन सकें." जीवन के कुछ पल मिले जिनमे वन्दनीय माताजी और गुरु त्रिमुर्तिजी के श्री चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ....... जो मेरे जीवन की सर्वश्रेष्ठ और अनमोल निधि हैं.... आज भी उनके चरणों की, उनके सानिध्य की कामना करता हूँ.......

क्यूंकि जीवन का सौभाग्य यही हैं की मनुष्य इस जीवन में गुरु को प्राप्त करे.
यह ललकार हैं अब भी नहीं जागोगे तो कब जागोगे
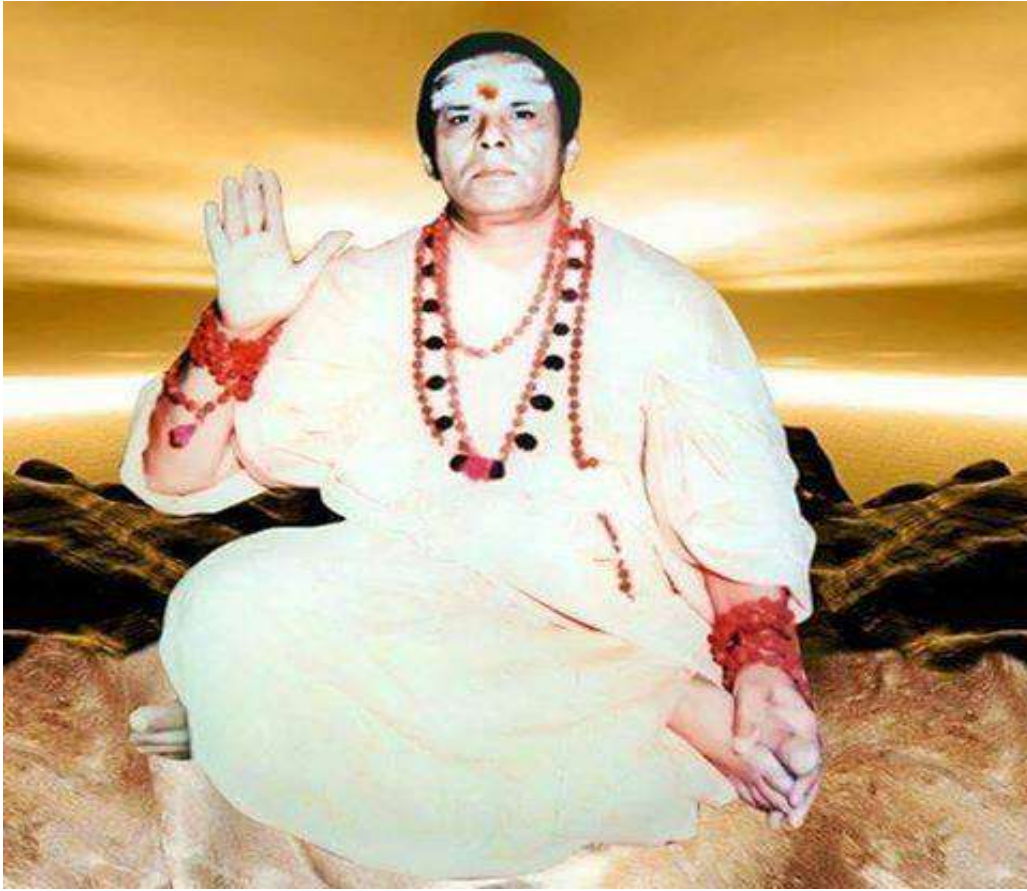
बहुत मुश्किल हैं, अपने आपकी जज्ब करना और बढ़ते हुए पारे को रोक कर नियंत्रित करना, मैं ब्राह्मण पुत्र हूँ और विनम्रतापूर्वक मुझे गर्व हैं, कि मेरी धमनियों में वशिष्ठ, विश्वामित्र, कणाद और पुलत्स्य जैसे ऋषि मुदगल का रक्त बह रहा हैं, मंत्रों और तंत्रों के चरणों में मैंने अपनी शानदार जवानी को समर्पित कर दिया हैं. जो उम्र मौज, शौक, आनंद और प्रसन्नता की होती हैं, वह उम्र मैंने हिमालय की कंटकाकीर्ण पगडंडियों पर विचरण करते हुए बितायी हैं, जो उम्र मखमली गद्दों पर सोने की होती हैं, उस उम्र में मैं अपनी पीठ के नीचे उबड़ खाबड़ पहाडों की चट्टानें रख कर सोया हूँ और जो उम्र नवोढ़ा दर्शन में व्यतीत होती हैं, वह उम्र मैंने जर्जर वृद्ध और सूखे हुए सन्यासियों के चरणों में व्यतीत की हैं. पर मुझे इस बात का अफ़सोस नहीं हैं, आज जब इस जीवन यात्रा के पथ पर एक क्षण रूक कर पीछे की और मुड़कर नापे हुए, रस्ते को देखता हूँ तो मुझे अपने आप पर गर्व होता हैं, कि मैंने उस रास्ते पर पैर बढाये हैं, जिस पर कंकर पत्थर कांटे और शूलों के अलावा कुछ भी नहीं हैं. मैं उन हिंसक सामाजिक भेड़ियों के बीच में से बढ़ता हुआ इस जगह तक पहुँचा हूँ जहाँ तक पहुचने के लिए जिंदगी को दांव पर लगाना पड़ता हैं, बिना जिजीविषा के यह रास्ता पार करना सम्भव नहीं. यहाँ पग-पग पर आलोचना, झूठे आक्षेप और प्रताड़ना के अलावा कुछ भी नहीं. ये दिखावटी भेड़िये हैं और इनके दांतों में निंदा रुपी मांस के टुकड़े अटके पड़े हैं, इस मांसों के टुकडों को कुतरने और इन हड्डियों को चबाने में इन्होने अपनी जिंदगी की पूर्णता समझी हैं, जिसका जैसा आत्म होता हैं, वह दूसरों

को भी वैसा ही समझता हैं, सैकड़ों वर्षों से इनका प्रयत्न यही रहा हैं कि रास्ते पर बढ़ने वाले पुरूष को खिंच कर अपनी जमात में मिला लिया जाए, उन्हें भी वही सब कुछ करने का ज्ञान दिया जायें, जो वह करते आ रहे हैं. और मैंने जिंदगी के इस पड़ाव पर एक क्षण के लिए ठहर कर चिंतन किया हैं, तो मेरी झोली में उपलब्धियां ही उपलब्धियां हैं. जब समाज मुग़लों और अंग्रेजों की दासता के नीचे छटपटा रहा था, तब मैंने स्वतन्त्रता के दीपक को जितना भी हो सकें जलाये रखने और अंधड़ तूफ़ान से बचाए रखने का प्रयत्न किया हैं, मैंने गुलामी के अन्धकार को अपनी नंगी आंखों से देखा हैं, अपनी जवानी में मैंने भारत-पाकिस्तान के समय मनुष्य की पाशविकता को अनुभव किया हैं, आधी रात को उन धर्मान्धियों के द्वारा मारे गए मनुष्यों की लाशों पर पाँव रखते हुए बाहर आने के लिए प्रयत्न किया हैं, मैंने वह सब अपनी इन आंखों से देखा हैं, उस दर्द को भोगा हैं, मैंने अपने देवता स्वरुप मित्रों को इन हत्यारों के हाथों कुचलते हुए अनुभव किया हैं. मैं इस दर्द का साक्षी हूँ, और मेरे सारे शरीर के दर्द अभी भी कभी-कभी कचोट मार लेता हैं. और मैंने उन भगवे कपड़े पहिने हुए सन्यासियों को देखा हैं, जो धार्मिक स्थानों पर या जंगलों में चमकीले कपड़े पहिने हुए अपने आपको पुजवाते हुए, ख़ुद के ही ललाट पर सिंदूर लगा कर बैठे हुए देखा हैं. मैंने इनके अन्दर झांक कर अनुभव किया हैं कि केवल ढोंग, पाखंड और छल के अलावा इसके पास कोई पूँजी नहीं हैं, भारतीय आप्त वाणी को भुनाते हुए ये गली कुचों में भटकने वाले भिक्षुओं से भी गए गुजरे हैं, और इनके छल, इनके झूठ और इनके पाखंड के दर्द को मैंने जहर की तरह गले के नीचे उतारा हैं, और भोगा हैं. बड़े-बड़े आश्रमों के ठेठ अन्दर अपने आपको छिपा कर कभी-कभी दर्शन देने वाले इन हथकण्डे बाज सन्यासियों को भी देखा हैं, जिनके पास थोथी बाजीगरी और लफ्फाजी का व्यापार हैं, और यह सब देखकर मेरे शरीर का पारा निश्चित रूप से इतना अधिक बढ़ जाता हैं कि कई बार मुझे अपने आप पर शर्म आने लगती थी कि मैं इन लोगों जैसे ही कपडे पहने हुए हूँ. पर इस अन्धकार में भी मुझे पच्चीस हज़ार वर्ष पूर्व पैदा हुए, मुदगल ऋषि के शब्द कानों में बराबर झंकृत हो रहे थे कि अँधेरा पीने वाला ही प्रकाश दे सकता हैं और जो अपने गले में जहर उतरने की हिम्मत रखता हैं, वही नीलकंठ कहला सकता हैं और मैंने इस जहर को हजार-हजार बार पिया हैं, इस अंधेरे में हज़ार-हज़ार बार ठोकरे खायी हैं, पैर लहुलुहान हुए और मैं उस ऋषि की आप्त वाणी की डोर के सहारे बराबर बढ़ता रहा हूँ, कि यदि सूर्य उगने तक मेरी जिंदगी का यह दीपक जलता रहा, तो मैं अवश्य ही उतनी रौशनी तो करता ही रहूँगा, जितनी कि घटाटोप अन्धकार में भारत वर्ष की आँखों को दिखाई दे सकने वाली सामर्थ्य दी जा सकें. और इस अंधकार का पार करते-करते मेरे जिंदगी के सुनहरे दिन समाप्त हो गए, यौवन का आनद पत्थरों से ठोकरे खा खा कर विलुप्त हो गया. आंखों के सुनहरे स्वप्न जंगलों की झड़बेरियों में उलझ कर रह गए, परिवार छुट गया, घर बार छुट गया, जवानी और मस्ती छुट गई, पर इन सबसे परे मुझे वह सब कुछ प्राप्त हुआ, जो हमारे पूर्वजों की धरोहर हैं, उन पूर्वजों ने उन कणाद, पुलस्त्य,

अत्रि और मुदगल ने जो कुछ थाती हमें सौंपी थी, हमारे कायर पूर्वजों ने उस थाती को भोज पत्रों और ताड़ पत्रों में छुपा निश्चिंत हो गए थे कि हमने फ़र्ज़ पूरा कर लिया, पर आने वाली पीढियों ने उन लोगों को न माफ़ करने वाली चुन-चुन कर ऐसी गालियाँ दी कि वे पीढियां ही काल के गर्भ में समाप्त हो गई, उनके नाम का भी अस्तित्व नहीं रहा, निश्चय ही शंकराचार्य और गोरखनाथ ने उस दीपक में अपने शरीर को तेल की तरह बना कर डाला और उस दीपक को बचाए रखा, उन्होंने अपनी जिंदगी और जवानी को दांव पर लगाकर उस बुझते हुए दीपक को संरक्षण देने का कार्य किया, और फ़िर कुछ उजाला फैला, कुछ समय के लिए फ़िर कुछ रोशनी हुयी, कुछ क्षणों के लिए ही सही, पर फ़िर कुछ साफ-साफ़ दिखाई देने लगा. पर बाद में एक ही झपट्टे में वह रौशनी मद्धिम पड़ गई. फ़िर हमारी पीढ़ियाँ शेर और शायरी में खो गई फ़िर हमारी जवानी घुन्घुरुओं की रुनझुन में सार्थकता अनुभव करने लगी और फ़िर उस दीपक पर अन्धकार के इतने मोटे-मोटे परदे टांग दिए गए कि दीपक का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया.

हमारी पीढी को तो यह एहसास ही नहीं रहा कि हमारे पूर्वजों में वशिष्ठ और विश्वामित्र थे. उन्हें गौत्र शब्द का उच्चारण ही याद नहीं रहा, केवल विवाह के समय ब्राह्मण उनके गौत्र का उच्चारण कर भूले भटके उन ऋषियों में से एक का नाम उच्चारण कर लेता, और हम अजनबियों की तरह चौक उठते कि ग़ालिब, मीर, मिल्टन, और शैक्सपियर जैसे परिचित नामों में इस ब्राह्मण ने यह किस नाम का उच्चारण कर दिया, और फिर अपने आपको समझाकर गौरवान्वित हो जाते हैं कि यह एक जल्दी कराने वाले ब्राह्मण के मंत्रों का ही कोई एक भाग होगा. और पूरे पच्चीस हज़ार वर्षों में अंग्रेजो ने पहली बार हमारे खून को टेक्नोलॉजी के नाम पर ठंडा कर दिया, पश्चिम के ज्ञान ने हम को अपने ही देश में अजनबी बना दिया. हमें जेम्स, स्टुअर्ट, विक्टोरिया जैसे नाम ज्यादा परिचित अनुभव लगे, इंग्लैंड का इतिहास हमारी जिंदगी के ज्यादा निकट रहा और हमारे पाँव राजमार्ग से परे हट कर जिस अस्पष्ट पगडण्डी पर चढ़ रहे थे, वह पगडण्डी भी पैरों से छीन गई, और हम उस उजाड़ जंगल में आगे बढ़ने में ही गौरवशाली अनुभव करने लगे, जिसका कोई अंत नहीं था. और यह सब कुछ हमारे रक्त में मिल गया, हमारे चेहरे बदल गए, हमारी आंखों में अंग्रेजियत झलकने लगी, सिर पर हैट और गले में टाई बाँध कर शीशे में अपने आपको देखने का अभ्यास करने लगे और जब आँखें दीवारों पर टंगे माँ बाप या पूर्वजों के चित्रों पर अटकती तो विश्वास ना होता था, कि हम इनकी संतान हैं, मन के किसी कोने में आवाज़ उठती थी कि इस ड्राइंग रूम में इन फूहड़ और असभ्य लोगों के चित्र टांगना उचित नहीं और वे चित्र उठाकर फेंक देने में मन के किसी कोने में संतोष उभरता, कि हम बहुत कुछ हैं. और इसी खून ने हमें कुछ महाज्ञान भी दिया और यह महाज्ञान था, पूजा पाठ क्या होता हैं, देवताओं के दर्शन करना दकियानूसी हैं, मंत्र तंत्र ढोंग और पाखण्ड हैं, जब इनके कथाकथित माँ बाप अंग्रेज चर्च में घुटने टेक कर ईसा को स्मरण कर रहे होते तब हम घर में पड़ी हुयी देवताओं की मूर्तियों

को पिछवाडे घूढ़े के ढेर पर फेंकते होते, जब वे पादरियों के वचनों को घूँट-घूँट पी रहे होते तब हम ब्राहमणों और सन्यासियों का मजाक उड़कर अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे होते, जब वे बाईबिल को अपने सिर से लगा रहे होते, तब हम गीता और रामायण को ठोकर मारकर फेंकने में सभ्यता की पूर्णता अनुभव कर रहे होते, यह हमारी पीढ़ी का इतिहास हैं, और हमने यही कुछ प्राप्त किया हैं, इन सबसे मेरे कलेजे पर हजारों फफोले पड़े हैं, मेरी मृत्यु के बाद चिता पर आकर कोई भी मेरे नंगे सीने को उधेड़ कर देख सकता हैं, कि उस पर इतने अधिक जख्म लगे हैं, कि अब कोई नया जख्म लगने के लिए जगह बाकी ही नहीं बची हैं. और ऐसे ही कायर और गुलाम माँ बाप की संतानों ने दो चार शब्द रट रखे हैं, कि पत्रिका को साईंटिफीक तरीके से निकलना चाहिए, मंत्रों तंत्रों में कुछ नई टेकनिक लेनी चाहिए, योग और मंत्रों का साईंटिफीक बेस प्रस्तुत करना चाहिए, मैं तो कह रहा हूँ कि मंत्रों तंत्रों को ही नहीं अपने माँ बाप के पुराने दकियानूसी नामों को भी बदल देना चाहिए, अपनी वृद्धा माँ को भी साईंटिफीक रूप सिखाना चाहिए, अपने वयोवृद्ध पिता को भी नई टेक्निक देनी चाहिए, क्योंकि बिना साईंटिफीक बेस के उनका आधार ही क्या हैं? और जब इनके ये शब्द सुनता हु तो मुझे दो हज़ार वर्ष पूर्व पैदा हुए ईसा को सूली पर चढ़ाते समय उनके कहे वाक्य याद आ जाते हैं, कि :- "हे भगवान्! इन्हें माफ़ करना, क्योंकि ये जानते नहीं कि ये क्या कह रहे हैं." सुश्रुत ने एक बार कहा था, कि सूखा और टूटा हुआ पत्ता हलकी हवा में उसी तरफ़ उड़ने लगता हैं, जिधर हवा बहती हैं, लेकिन गहरी जड़ों वाला वटवृक्ष तेज अंधड़ में भी एक से दूसरी तरफ़ झूकता हुआ भी उखाड़ता नहीं, जिनके पास अपने जड़े नहीं होती, वे केवल ओपन माइंडेड ही हो सकते हैं, इसके अलावा होंगे भी क्या? आप पश्चिम के किसी भी विद्वान् से पूछ लीजिये तो वह भी बता देगा कि हमारी विद्यायें और हमारी तकनीक हमारी स्वयं की जीवन पद्धति से निकली हैं, और उनके द्वारा ही हम अपनी और समाज की समस्याओं का समाधान निकाल सकते हैं, अब कोई लल्लू भी आपको यह बता देगा कि भारतीय जीवन पद्धति अमेरिका या यूरोप की जीवन पद्धति से अलग हैं, यूरोपीय विद्याओं और तकनीक में ऐसा सर्वकालिक कुछ भी नहीं हैं, जो किसी भी परिस्थिति में सच हो, जबकि भारतीय चिंतन और दर्शन बीस हज़ार वर्ष पहले भी उतना ही सच था, जितना आज हैं, यहाँ पर मुझे पश्चिम के वैज्ञानिक सुमाकर की उक्ति याद आती हैं, जो उसने किसी भारतीय को कही थी :- "हे वत्स! पश्चिम के मोडल और टेक्नोलॉजी के पीछे पड़े हुए तुम लोगों पर इसीलिए तरस आता हैं, कि तुम अपनी प्रतिभा, शक्ति, समय और पैसा उन समस्याओं के समाधान में बरबाद कर रहे हो जो तुम्हारे समाज की नहीं, मेरे समाज की हैं." जब आप अपनी चाबी किसी अनजान ताले में लगा कर उसे खोलने की कोशिश करेंगे तो आप ताला तो बिगडेगा ही, उसके साथ ही साथ कुंजी भी, हमने अभी तक यही किया हैं, हमने अपने जीवन और समाज के बंद पड़े तालों को उन चाबियों से खोलने की कोशिश की हैं, जो उनके लिए बनी ही नहीं हैं और इसीलिए हम पिछले सैकड़ों वर्षों से अपने

तालों और चाबियों को ख़राब ही कर रहे हैं. हम हैं, और बहुत कुछ हैं, इसका प्रमाण पत्र लेने के लिए किसी दफ्तर में जाने की जरुरत नहीं, हम मृत्युंजयी संस्कृति के देश के बाशिंदे हैं, हमें बाहर से उच्च तकनीक को गले नहीं लगाना हैं, अपितु अन्दर से अपने सत्य का साक्षात्कार करना हैं, और यह हम स्वयं होकर ही कर सकते हैं, अपने मंत्रों के मध्यम से ही अपने योग और दर्शन के द्वारा ही अपनी जिंदगी को पूर्णता दे सकते हैं, हम विविध साधनाओं के द्वारा ही शरीर की धमनियों में बहते हुए, अशुद्ध रक्त को शुद्ध कर सकते हैं, और यह शुद्ध रक्त ही हमारे चेहरे पर पुनः भारतीयता दे सकेगा, हमारी आँखें वापिस अपने आपको पहिचानने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकेगी, और इन विशिष्ट साधनाओं में भाग लेकर ही हम उस आत्म से साक्षात्कार कर सकेंगे जो हमारा स्वयं का आत्म हैं. और जब ऐसा हो सकेगा, तभी हम अपने आपको पहिचान सकेंगे, तभी हम कूड़े के ढेर पर पड़े हुए अपने माँ बाप के चित्रों को पौंछ कर ड्राइंग रूम में लगाने में गौरव अनुभव कर सकेंगे, तभी हम अपने आत्म को जगाकर इष्ट के साक्षात् जाज्वल्यमान दर्शन कर सकेंगे, जो कि हमारे जीवन की पूर्णता हैं, और तभी मैं एहसास कर सकूँगा कि मेरे पांवों में गडे हुए लांखों कांटे और सीने में उठे हुए फफौले राहत दे रहे हैं, कि मुझे विश्वास हैं ऐसा होगा ही, और इसी सत्य को प्रदान करने की कामना लिए हुए, मैं अपने पथ पर निरंतर अग्रसर हूँ, और बराबर जीवन की अन्तिम साँस तक अग्रसर बना रहूँगा. -
परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानंद जी महाराज.
(सदगुरुदेव डॉ. नारायण दत्त श्रीमालीजी)

....

"निखिल"शव्द कितना महत्वपूर्ण है यह तो वह व्यक्ति ही समझ सकता है जो उस प्रेम में अभिभूत हुआ हो,जो उस विराटता का अंकन कर सका हो जिसने जाना हो कि वह एक व्यक्ति न हो के एक सत्ता ही है जो ब्रम्हांड की गति ह जिसके सामने महान से महान तांत्रिक मांत्रिक योगी सभी नतमस्तक हो जिनके इशारे पर देवी देवता कार्य करते है उसी महान विराट सत्ता का एक अत्यधिक पवन नाम "निखिल"है इस पीढ़ी का सौभाग्य है की निखिल ने अंशावतार ले कर हम सब के बिच में रह कर धन्य किया है और अनेक शिष्य बनाकर एक महानतम कार्य करने के लिए अपने शिष्यो को कृतग्य किया ।।जय गुरुदेव ।।

गुरु की महिमा शब्दों की सीमा से परे है ***
अंधकार को मिटाता है गुरु , जीवन की ज्योति जगता है गुरु ,सद्मार्ग की राह दिखता है गुरु ,भवसागर के सागर से तरना सीखता है गुरु ,ग्यान की गंगा बहता है गुरु ,, जीवन की ज्योति जगता है गुरु , गुरु बिनु है यह संसार अधूरा ,,मानव की जीवन की दिव्य डोर है गुरु ,, खुशियों का नव संसार है गुरु ,,,भावनाओं के समुन्दर का पार है गुरू ,महिमा आपकी अपरम्पार है गुरु ,कभी विश्वामित्र बन राम को सिखाये ,जीवन सच्ची राह हैं दिखाये ,संदीपन , परसुराम द्रोण आप हैंशिष्यो के जीवन की जोड़ आप

हैंराज के नज्म की सच्ची तस्वीर आप हैं,जगमगाते जीवन की तस्वीर आप हैं,,,, गुरु की महिमा शब्दों की सीमा से परे है ,बना नही है शब्द कोई जो उनके पटतरे[समतुल्य] हो ,गुरू आपकी महिमा का कोई मोल नहीं है ,,,,
****

गुरु की महिमा शब्दों की सीमा से परे है ***
अंधकार को मिटाता है गुरु , जीवन की ज्योति जगता है गुरु ,सद्मार्ग की राह दिखता है गुरु ,भवसागर के सागर से तरना सीखता है गुरु ,ग्यान की गंगा बहता है गुरु ,, जीवन की ज्योति जगता है गुरु , गुरु बिनु है यह संसार अधूरा ,,मानव की जीवन की दिव्य डोर है गुरु ,, खुशियों का नव संसार है गुरु ,,,भावनाओं के समुन्दर का पार है गुरू ,महिमा आपकी अपरम्पार है गुरु ,कभी विश्वामित्र बन राम को सिखाये ,जीवन सच्ची राह हैं दिखाये ,संदीपन , परसुराम द्रोण आप हैंशिष्यो के जीवन की जोड़ आप हैंराज के नज्म की सच्ची तस्वीर आप हैं,जगमगाते जीवन की तस्वीर आप हैं,,,, गुरु की महिमा शब्दों की सीमा से परे है ,बना नही है शब्द कोई जो उनके पटतरे[समतुल्य] हो ,गुरू आपकी महिमा का कोई मोल नहीं है ,,,,
****

गुरु सो ज्ञान जु लीजिये, सीस दीजये दान |
बहुतक भोंदू बहि गये, सखि जीव अभिमान ||

अपने सिर की भेंट देकर गुरु से ज्ञान प्राप्त करो | परन्तु यह सीख न मानकर और तन, धनादि का अभिमान धारण कर कितने ही मूर्ख संसार से बह गये, गुरुपद - पोत में न लगे |
****

गुरु की आज्ञा आवै, गुरु की आज्ञा जाय |
कहैं कबीर सो संत हैं, आवागमन नशाय ||

व्हेवहार में भी साधु को गुरु की आज्ञानुसार ही आना - जाना चाहिए | सद् गुरु कहते हैं कि संत वही है जो जन्म - मरण से पार होने के लिए साधना करता है |
****

गुरु पारस को अन्तरो, जानत हैं सब सन्त |
वह लोहा कंचन करे, ये करि लये महन्त ||

गुरु में और पारस - पत्थर में अन्तर है, यह सब सन्त जानते हैं | पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है, परन्तु गुरु शिष्य को अपने समान महान बना लेता है |
****

कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय |
जनम - जनम का मोरचा, पल में डारे धोया ||

कुबुद्धि रूपी कीचड़ से शिष्य भरा है, उसे धोने के लिए गुरु का ज्ञान जल है | जन्म - जन्मान्तरो की बुराई गुरुदेव क्षण ही में नष्ट कर देते हैं |
****

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि - गढ़ि काढ़ै खोट |
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ||

गुरु कुम्हार है और शिष्य घड़ा है, भीतर से हाथ का सहार देकर, बाहर से चोट मार - मारकर और गढ़ - गढ़ कर शिष्य की बुराई को निकलते हैं |
****

गुरु समान दाता नहीं, याचक शीष समान |
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्ही दान ||

गुरु के समान कोई दाता नहीं, और शिष्य के सदृश याचक नहीं | त्रिलोक की सम्पत्ति से भी बढकर ज्ञान - दान गुरु ने दे दिया |
****

जो गुरु बसै बनारसी, शीष समुन्दर तीर |
एक पलक बिखरे नहीं, जो गुण होय शारीर ||

यदि गुरु वाराणसी में निवास करे और शिष्य समुद्र के निकट हो, परन्तु शिष्ये के शारीर में गुरु का गुण होगा, जो गुरु लो एक क्षड भी नहीं भूलेगा |
****

गुरु को सिर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं |
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोकों भय नाहिं ||

गुरु को अपना सिर मुकुट मानकर, उसकी आज्ञा मैं चलो | कबीर साहिब कहते हैं, ऐसे शिष्य - सेवक को तनों लोकों से भय नहीं है |
****

गुरु सो प्रीतिनिवाहिये, जेहि तत निबहै संत |
प्रेम बिना ढिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कंत ||

जैसे बने वैसे गुरु - सन्तो को प्रेम का निर्वाह करो | निकट होते हुआ भी प्रेम बिना वो दूर हैं, और यदि प्रेम है, तो गुरु - स्वामी पास ही हैं |
****

गुरु मूरति गति चन्द्रमा, सेवक नैन चकोर |
आठ पहर निरखत रहे, गुरु मूरति की ओर ||

गुरु की मूरति चन्द्रमा के समान है और सेवक के नेत्र चकोर के तुल्य हैं | अतः आठो पहर गुरु - मूरति की ओर ही देखते रहो |
****

गुरु मूरति आगे खड़ी, दुतिया भेद कुछ नाहिं|
उन्हीं कूं परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाहिं ||

गुरु की मूर्ति आगे खड़ी है, उसमें दूसरा भेद कुछ मत मानो | उन्हीं की सेवा बंदगी करो, फिर सब अंधकार मिट जायेगा|
****

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास |
गुरु सेवा ते पाइए, सद् गुरु चरण निवास ||

ज्ञान, सन्त - समागम, सबके प्रति प्रेम, निर्वासनिक सुख, दया, भक्ति सत्य - स्वरुप और सद् गुरु की शरण में निवास - ये सब गुरु की सेवा से निलते हैं |
****

सब धरती कागज करूँ, लिखनी सब बनराय |
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय ||

सब पृथ्वी को कागज, सब जंगल को कलम, सातों समुद्रों को स्याही बनाकर लिखने पर भी गुरु के गुण नहीं लिखे जा सकते |

****
पंडित यदि पढि गुनि मुये, गुरु बिना मिलै न ज्ञान |
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त शब्द परमान ||

बड़े - बड़े विद्व्न शास्त्रों को पढ - गुनकर ज्ञानी होने का दम भरते हैं, परन्तु गुरु के बिना उन्हें ज्ञान नही मिलता | ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती |
****
कहै कबीर तजि भरत को, नन्हा है कर पीव|
तजि अहं गुरु चरण गहु, जमसों बाचै जीव ||

कबीर साहेब कहते हैं कि भ्रम को छोडो, छोटा बच्चा बनकर गुरु - वचनरूपी दूध को पियो | इस प्रकार अहंकार त्याग कर गुरु के चरणों की शरण ग्रहण करो, तभी जीव से बचेगा |
****
सोई सोई नाच नचाइये, जेहि निबहे गुरु प्रेम |
कहै कबीर गुरु प्रेम बिन, कितहुं कुशल नहिं क्षेम ||

अपने मन - इन्द्रियों को उसी चाल में चलाओ, जिससे गुरु के प्रति प्रेम बढता जये | कबीर साहिब कहते हैं कि गुरु के प्रेम बिन, कहीं कुशलक्षेम नहीं है |
****
तबही गुरु प्रिय बैन कहि, शीष बढ़ी चित प्रीत |
ते कहिये गुरु सनमुखां, कबहूँ न दीजै पीठ ||

शिष्य के मन में बढ़ी हुई प्रीति देखकर ही गुरु मोक्षोपदेश करते हैं | अतः गुरु के समुख रहो, कभी विमुख मत बनो |
****
अबुध सुबुध सुत मातु पितु, सबहिं करै प्रतिपाल |
अपनी ओर निबाहिये, सिख सुत गहि निज चाल ||

मात - पिता निर्बुधि - बुद्धिमान सभी पुत्रों का प्रतिपाल करते हैं | पुत्र कि भांति ही शिष्य को गुरुदेव अपनी मर्यादा की चाल से मिभाते हैं |
****
करै दूरी अज्ञानता, अंजन ज्ञान सुदये |
बलिहारी वे गुरु की हँस उबारि जु लेय ||

ज्ञान का अंजन लगाकर शिष्य के अज्ञान दोष को दूर कर देते हैं | उन गुरुजनों की प्रशंसा है, जो जीवो को भव से बचा लेते हैं |
****

साबुन बिचारा क्या करे, गाँठे वाखे मोय |
जल सो अरक्षा परस नहिं, क्यों कर ऊजल होय ||

साबुन बेचारा क्या करे,जब उसे गांठ में बांध रखा है |जल से स्पर्श करता ही नहीं फिर कपडा कैसे उज्वल हो | भाव - ज्ञान की वाणी तो कंठ कर ली, परन्तु विचार नहीं करता, तो मन कैसे शुद्ध हो |
****

राजा की चोरी करे, रहै रंक की ओट |
कहै कबीर क्यों उबरै, काल कठिन की चोट ||

कोई राजा के घर से चोरी करके दरिद्र की शरण लेकर बचना चाहे तो कैसे बचेगा | इसी प्रकार सद् गुरु से मुख छिपाकर, और कल्पित देवी - देवतओं की शरण लेकर कल्पना की कठिन चोट से जीव कैसे बचेगा |
****

सतगुरु सम कोई नहीं, सात दीप नौ खण्ड |
तीन लोक न पाइये, अरु इकइस ब्रह्मणड ||

सात द्वीप, नौ खण्ड, तीन लोक, इक्कीस ब्रह्मणडो में सद् गुरु के समान हितकारी आप किसी को नहीं पायेंगे |
****

सतगुरु तो सतभाव है, जो अस भेद बताय |
धन्य शिष धन भाग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय ||

सद् गुरु सत्ये - भाव का भेद बताने वाला है | वह शिष्य धन्य है तथा उसका भाग्य भी धन्य है जो गुरु के द्वारा अपने स्वरुप की सुधि पा गया है |
****

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय |
भ्रम का भाँडा तोड़ी करि, रहै निराला होय ||

सद् गुरु मिल गये - यह बात तब जाने जानो, जब तुम्हारे हिर्दे में ज्ञान का प्रकाश हो जाये, भ्रम का भंडा फोडकर निराले स्वरूपज्ञान को प्राप्त हो जाये |
****

मनहिं दिया निज सब दिया, मन से संग शरीर |
अब देवे को क्या रहा, यो कथि कहहिं कबीर ||

यदि अपना मन तूने गुरु को दे दिया तो जानो सब दे दिया, क्योंकि मन के साथ ही शरीर है, वह अपने आप समर्पित हो गया | अब देने को रहा ही क्या है |
****

जेही खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव |
कहैं कबीर सुन साधवा, करू सतगुरु की सेवा ||

जिस मुक्ति को खोजते ब्रह्मा, सुर - नर मुनि और देवता सब थक गये | ऐ सन्तो, उसकी प्राप्ति के लिए सद् गुरु की सेवा करो |
****

जग में युक्ति अनूप है, साधु संग गुरु ज्ञान |
तामें निपट अनूप है, सतगुरु लगा कान ||

दुखों से छूटने के लिए संसार में उपमारहित युक्ति संतों की संगत और गुरु का ज्ञान है | उसमे अत्यंत उत्तम बात यह है कि सतगुरु के वचनों पार कान दो |
****

डूबा औधर न तरै, मोहिं अंदेशा होय |
लोभ नदी की धार में, कहा पड़ा नर सोय ||

कुधर में डूबा हुआ मनुष्य बचता नहीं | मुझे तो यह अंदेशा है कि लोभ की नदी - धारा में ऐ मनुष्यों - तुम कहां पड़े सोते हो |
****

केते पढी गुनि पचि मुए, योग यज्ञ तप लाय |
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करे उपाय ||
कितने लोग शास्त्रों को पढ - गुन और योग व्रत करके ज्ञानी बनने का ढोंग करते हैं, परन्तु बिना सतगुरु के ज्ञान एवं शांति नहीं मिलती, चाहे कोई करोडों उपाय करे |
****

सतगुरु खोजे संत, जीव काज को चाहहु |
मेटो भव के अंक, आवा गवन निवारहु ||

ऐ संतों - यदि अपने जीवन का कल्याण चाहो, तो सतगुरु की खोज करो और भव के अंक अर्थात छाप, दाग या पाप मिटाकर, जन्म - मरण से रहित हो जाओ |
****

यह सतगुरु उपदेश है, जो माने परतीत |
करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भव जलजीत ||

यही सतगुरु का यथार्थ उपदेश है, यदि मन विश्वास करे, सतगुरु उपदेशानुसार चलने वाला करम भ्रम त्याग कर, संसार सागर से तर जाता है |
****

जाका गुरु है आँधरा, चेला खरा निरंध |
अन्धे को अन्धा मिला, पड़ा काल के फन्द ||

जिसका गुरु ही अविवेकी है उसका शिष्य स्वय महा अविवेकी होगा | अविवेकी शिष्य को अविवेकी गुरु मिल गया, फलतः दोनों कल्पना के हाथ में पड़ गये |
****

जनीता बुझा नहीं बुझि, लिया नहीं गौन |
अंधे को अंधा मिला, राह बतावे कौन ||

विवेकी गुरु से जान - बुझ - समझकर परमार्थ - पथ पर नहीं चला | अंधे को अंधा मिल गया तो मार्ग बताये कौन |
****

गुरु का महत्व

गुरु के महत्व पर संत शिरोमणि तुलसीदास ने रामचरितमानस में लिखा है –

गुर बिनु भवनिधि तरइ न कोई।
जों बिरंचि संकर सम होई।।

भले ही कोई ब्रह्मा, शंकर के समान क्यों न हो, वह गुरु के बिना भव सागर पार नहीं कर सकता। धरती के आरंभ से ही गुरु की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, गीता, गुरुग्रन्थ साहिब आदि सभी धर्मग्रन्थों एवं सभी महान संतों द्वारा गुरु की महिमा का गुणगान किया गया है। गुरु और भगवान में कोई अन्तर नहीं है। संत शिरोमणि तुलसीदास जी रामचरितमानस में लिखते हैं –

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर।।
अर्थात् गुरू मनुष्य रूप में नारायण ही हैं। मैं उनके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ। जैसे सूर्य के निकलने पर अन्धेरा नष्ट हो जाता है, वैसे ही उनके वचनों से मोहरूपी अन्धकार का नाश हो जाता है।

किसी भी प्रकार की विद्या हो अथवा ज्ञान हो, उसे किसी दक्ष गुरु से ही सीखना चाहिए। जप, तप, यज्ञ, दान आदि में भी गुरु का दिशा निर्देशन जरूरी है कि इनकी विधि क्या है? अविधिपूर्वक किए गए सभी शुभ कर्म भी व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं जिनका कोई उचित फल नहीं मिलता। स्वयं की अहंकार की दृष्टि से किए गए सभी उत्तम माने जाने वाले कर्म भी मनुष्य के पतन का कारण बन जाते हैं। भौतिकवाद में भी गुरू की आवश्यकता होती है।

सबसे बड़ा तीर्थ तो गुरुदेव ही हैं जिनकी कृपा से फल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। गुरुदेव का निवास स्थान शिष्य के लिए तीर्थ स्थल है। उनका चरणामृत ही गंगा जल

है। वह मोक्ष प्रदान करने वाला है। गुरु से इन सबका फल अनायास ही मिल जाता है। ऐसी गुरु की महिमा है।

तीरथ गए तो एक फल, संत मिले फल चार।
सद्‌गुरु मिले तो अनन्त फल, कहे कबीर विचार।।

मनुष्य का अज्ञान यही है कि उसने भौतिक जगत को ही परम सत्य मान लिया है और उसके मूल कारण चेतन को भुला दिया है जबकि सृष्टि की समस्त क्रियाओं का मूल चेतन शक्ति ही है। चेतन मूल तत्व को न मान कर जड़ शक्ति को ही सब कुछ मान लेनाअज्ञानता है। इस अज्ञान का नाश कर परमात्मा का ज्ञान कराने वाले गुरू ही होते हैं। किसी गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रथम आवश्यकता समर्पण की होती है। समर्पण भाव से ही गुरु का प्रसाद शिष्य को मिलता है। शिष्य को अपना सर्वस्व श्री गुरु देव के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। इसी संदर्भ में यह उल्लेख किया गया है कि

यह तन विष की बेलरी, और गुरू अमृत की खान,
शीश दियां जो गुरू मिले तो भी सस्ता जान।

गुरु ज्ञान गुरु से भी अधिक महत्वपूर्ण है। प्राय: शिष्य गुरु को मानते हैं पर उनके संदेशों को नहीं मानते। इसी कारण उनके जीवन में और समाज में अशांति बनी रहती है। गुरु के वचनों पर शंका करना शिष्यत्व पर कलंक है। जिस दिन शिष्य ने गुरु को मानना शुरू किया उसी दिन से उसका उत्थान शुरू शुरू हो जाता है और जिस दिन से शिष्य ने गुरु के प्रति शंका करनी शुरू की, उसी दिन से शिष्य का पतन शुरू हो जाता है। सद्‌गुरु एक ऐसी शक्ति है जो शिष्य की सभी प्रकार के ताप-शाप से रक्षा करती है। शरणा गत शिष्य के दैहिक, दैविक, भौतिक कष्टों को दूर करने एवं उसे बैकुंठ धाम में पहुंचाने का दायित्व गुरु का होता है।

आनन्द अनुभूति का विषय है। बाहर की वस्तुएँ सुख दे सकती हैं किन्तु इससे मानसिक शांति नहीं मिल सकती। शांति के लिए गुरु चरणों में आत्म समर्पण परम आवश्यक है। सदैव गुरुदेव का ध्यान करने से जीव नारायण स्वरूप हो जाता है। वह कहीं भी रहता हो, फिर भी मुक्त ही है। ब्रह्म निराकार है। इसलिए उसका ध्यान करना कठिन है। ऐसी स्थिति में सदैव गुरुदेव का ही ध्यान करते रहना चाहिए। गुरुदेव नारायण स्वरूप हैं। इसलिए गुरु का नित्य ध्यान करते रहने से जीव नारायणमय हो जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गुरु रूप में शिष्य अर्जुन को यही संदेश दिया था –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्याि माम शुच: ।। (गीता 18/66)
अर्थात् सभी साधनों को छोड़कर केवल नारायण स्वरूप गुरु की शरणगत हो जाना चाहिए। वे उसके सभी पापों का नाश कर देंगे। शोक नहीं करना चाहिए।

श्री नारायण दत्त श्रीमालीजी - भाग १

चौरासी लाख योनियों में जीव जन्म लेते-लेते अंत में मनुष्य को जन्म मिलता है। मनुष्य योनी में भी जीवन के अनेक रसों, भोगों में लिप्त होने बाद जब उसे जीवन की निःस्सारता का बोध होता है, वहीं क्षण इश्वर के पथ पर, आत्म कल्याण एवं परमानंद के पथ पर बढ़ा पहला कदम होता है। और यही से प्रारंभ होती है उसकी खोज, जो की सदैव से ही ज्ञानियों के लिए विचारणीय विषय रहा है, कि परमात्मा का स्वरुप क्या है? और जब जीव की पुकार तीव्र हो जाती है, तो प्रभु उसे किसी न किसी रूप में कृतार्थ करते ही हें। और इसीलिए इश्वर का मनुष्य रूप में समय-समय पर अवतार होता रहा है। शास्त्रों में परमात्मा के दशावतारों का विवरण आया है - कूर्मावतार, मत्स्यावतार, वराह अवतार, वामनावतार, नृसिंहावतार, परशुराम अवतार, रामावतार, कृष्णावतार, बुद्धावतार।
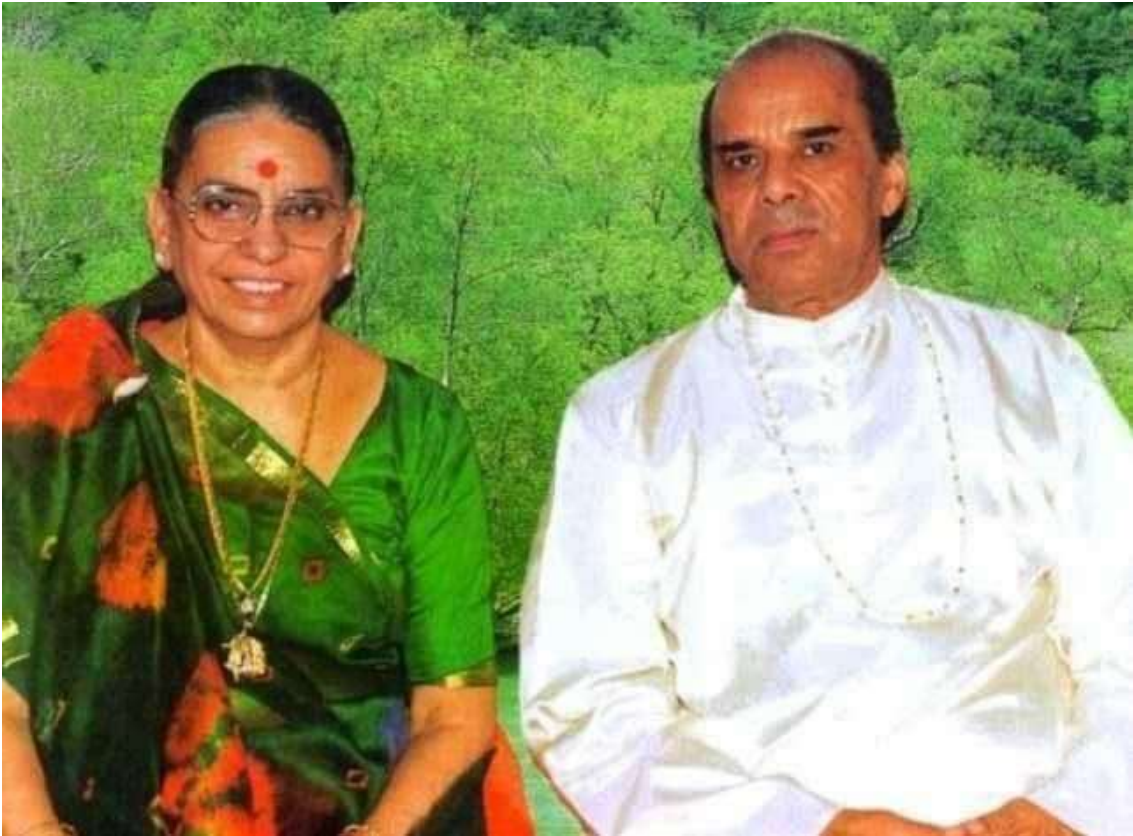
अवतारों के इसी क्रम की आगे बढाती श्रृंखला की एक कथा का विवरण 'कल्कि पुराण' के श्लोक क्रं १ से २२ तक आया है। नैमिषारन्य में समस्त अवतारों की कथा-लीला, वार्तालाप महर्षि सूद और शौनकादीऋषियों में चल रही थी और ऋषिश्रेष्ठ सूद जी से शौनक मुनि प्रश्न करते हें, कि बुद्धावतार के बाद कलियुग जब पराकाष्ठा में होगा, तब भगवान् किस शक्ति स्वरुप में जन्म लेंगे? उसका विवरण देते हुए सूत जी बोले - "हे मुनीश्वर ! ब्राह्माजी ने अपनी पीठ से घोर मलीन पातक को उत्पन्न किया, जिसका नाम रखा गया - 'अधर्म'। अधर्म जब बड़ा हुआ, तब उसका 'मिथ्या' से विवाह कर दिया। दोनों के संयोग से महाक्रोधी पुत्र 'दम्भ' तथा 'माया' नामक कन्या हुई। फिर दम्भ व् माया के संयोग से 'लोभ' नामक पुत्र और विकृति नामक कन्या हुई। दोनों ने 'क्रोध' को जन्म दिया। क्रोध से हिंसा व् इन दोनों के संयोग से काली देहवाले महाभयंकर 'कलि' का जन्म हुआ। कराल, चंचल, भयानक, दुर्गन्धियुक्त शरीर, द्यूत, मद्य, स्वर्ण और वेश्या में निवास करने वाले इस कलि की बहीण व् संतानों के रूप में दुरुक्ति, भयानक, मृत्यु, निरत, यातना का जन्म हुआ। जिसके हजारो अधर्मी पुत्र-पुत्री आधी-व्याधि, बुढ़ापा, दुःख, शोक, पतन, भोग-विलास आदि में निवास कर यग्य, तप, दान, स्वाध्याय, उपासना आदि का नाश करने लगे।"

और कलियुग में ऐसा हि होने लगा - क्रोध, दम्भ, माया, मलिनता, व्याधि, भोग, पतन इत्यादि स्थितियां उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे इन स्थितियों ने संसार को इतना ढक दिया, कि आम आदमी ईश्वरीय सत्ता पर संदेह करने लगा। संभवतया महाभारत के समय कृष्ण ने इस स्थिति को समझा और कहा –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ।

अर्थात जब-जब संसार ने अनीति, अत्याचार , अधर्म पूर्ण रूप से व्याप्त हो जाएगा, तब ईश्वरीय सत्ता किसी न किसी रूप में प्रादुर्भाव लेगी। जब त्रेता युग में परिवार की मर्यादाओं की हानि हो रही थी, यज्ञ, तप मलिन हो रहे थे, तब परमात्मा ने भगवान् श्रीराम के रूप में अवतरण किया। राज गृह में जन्म लेकर मर्यादा स्थापित करने के लिए पुरे आर्यावत का भ्रमण किया। वनवास रूप में यह भ्रमण तो उनका एक लीला स्वरुप था, मूल भावना यह थी, कि पुरे आर्यावत को अयोध्या से लंका तक एक किया जाए। हर स्थान पर पुनः वेद वाणी का गुंजन हो और पुन यज्ञ ज्योति प्रज्वलित हो। अपने इस स्वरुप में श्रीराम ने कहीं भी कोई जाती भेद, स्थान भेद नहीं किया, वानर भील आदिवासी सभी तो उनके प्रिय थे ... और उनका पूरा विचरण राष्ट्र वनवास ही था। अपनी पत्नी के साथ पद यात्रा कर एक भावनात्मक एहसास जन मानस में उत्पन्न किया, फिर उन्होनें सबको साथ लेकर आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक रावण का सम्पूर्ण नाश किया। केवल रावण ही नहीं, उसके साथ जो भी आसुरिय प्रवृत्तियों के व्यक्ति थे उन सबका जड़-मूल से ही नाश कर पूरे भूमण्डल पर शुद्ध धर्म स्थापित किया।

श्रीराम ने भी विश्वामित्र से अस्त्र-शास्त्र विद्या सीखी और ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से ज्ञान प्राप्त किया और वह भी गुरुकुल में रहकर।

श्रीकृष्ण ने भी मां के गर्भ से जन्म लिया। एक बालक की तरह अपनी बाल लीलाएं संपन्न की, देवकी के गर्भ से जन्म लेकर यशोदा के घर उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। अपने बाल्यकाल में निरंतर लीलाएं करते हुए आसुरी प्रवृत्तियों का नाश करने के लिए प्रवृत्त रहना - कालिया मर्दन, पूतना वध इत्यादि कार्य तो उन्होनें बाल्यकाल में ही संपन्न कर दी और जहां द्वापर युग में लोगों के जीवन में शुष्कता और द्वेष की अधिकता हो गई थी, वहां उन्होनें प्रेम को एक नई अभिव्यक्ति दी।

उनकी रासलीला, जिसमे पूरा भू-मण्डल कृष्णमय होकर उनके साथ नृत्य संगीत कर रहा था, यह प्रेम की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति ही तो थी, लेकिन इसके साथ ही साथ सुदूर सान्दीपन आश्रम में जाकर शिष्य के रूप में शिक्षा भी ग्रहण की।

अवतारी पुरूष को क्या आवश्यकता थी, कि वे शिक्षा आदि ग्रहण करते, जीवन के सामान्य नियमों का पालन करते? लेकिन उन्हें समाज के सामने आदर्श स्थापित करना था, और उनके इस प्रेम स्वरुप के साथ ही श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का नीतिज्ञ स्वरुप, युगनिर्माता स्वरुप भी प्रकट होता है - महाभारत के युद्ध के समय। ठीक वही स्थिति जो राम के समय थी, जब रावण रूपी आसुरी प्रवृत्तियां बढ़ गई थीं और फिर द्वापर में कौरव रूपी आसुरी प्रवृत्तियां बढ़ गई थीं और पूरे भू-मण्डल पर आधिकार कर लिया था। तब श्रीकृष्ण ने अपने विराटस्वरूप के माध्यम से अर्जुन को ज्ञान करवाया, कि संख्या बल महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है धर्म की स्थापना, चाहे इसके लिए जीवन का बलिदान ही क्यों न करना पड़े। यदि सत्य और धर्म तुम्हारे साथ है, तो आसुरी प्रवृत्तियां कभी भी विजय प्राप्त नहीं कर सकती हें। महाभारत का युद्ध इतिहास परिवर्तन का युद्ध था। पुनः आर्यावत में धर्म की चेतना जागृत हुई, सामाजिक जीवन को नष्ट कर देने वाली - विलासिता, जुआ, मद्यपान, नारी अपमान की प्रवृत्तियां नष्ट हुई।

पूरे जीवन कृष्ण ने किसी भी प्रकार की सामाजिक आचार सहिंता का उल्लंघन नहीं किया, गृहस्थ जीवन भी धारण किया और जब देखा कि गोकुल, मथुरा, हस्तिनापुर में मेरा कार्य पूर्ण हो गया है, तो सुदूर द्वारका में राज्य स्थापन कर वहां धर्म स्थापना की, जिससे अखंड आर्यावत का निर्माण हो सके।

काल का चक्र निरंतर चलता ही रहा और यही आर्यावत छोटे-छोटे राज्यों में बट गया। प्रत्येक राज्य में द्वेष, हजारों प्रकार की पूजाएं, नास्तिकता-आस्तिकता का संघर्ष - तब प्रभु ने बुद्ध के रूप में जन्म लिया और उनकी जीवन यात्रा सिद्धार्थ रूप

में जन्म लेकर बोधीसत्व प्राप्त कर अन्ततः तथागत स्वरुप प्राप्त कर लेने तक की एक विराट यात्रा थी, जिसमें उन्होनें तीन सिद्धांत जनमानस में स्थापित किए –

बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि
अर्थात खण्ड-खण्ड में बटकर रहने की बजाय संघ बनाकर धर्म पालन आवश्यक है और धर्म का पालन शुद्ध सात्विक बुद्धि, जो कि बुद्धत्व उत्पन्न करती है, उसके द्वारा ही सम्भव है। उस समय की मांग जनमानस में त्याग, करुणा, प्रेम, साहचर्य उत्पन्न करना था और क्षत्रिय परिवार में जन्म लेकर बुद्ध ने भिक्षुक वेष धारण कर भिक्षा पात्र में लेकर पुरे आर्यावर्त में और उससे भी बाहर सुदूर देशों में धर्म की स्थापना की। उन्होनें स्वयं कभी कोई सम्राट पद धारण नहीं किया, लेकिन सारे सम्राट उनके ही तो अधीन थे। वे तो जन-जन के सम्राट थे और क्यों न हों, कि पुनः एकता, साहचर्य और धर्म स्थापित हो गया।

इन तीनों महावातारों में पूर्ण भिन्नता नजर आती है, ऐसा इसलिए हुआ कि युग धर्म के अनुसार भगवान् अलग-अलग स्वरूपों में प्रकट होते हें। जहां जिस प्रकार के कार्य कि आवश्यकता होती है, भगवान् युगपुरुष में, युग-द्दष्टा के रूप में अवतरित होते है और जिस उद्देश्य के लिए अवतरण लेते हें, उस कार्य को पूरा करने के पश्चात पुनः ब्रह्माण्ड में अपने विराट स्वरुप में स्थित हो जाते हैं।

प्रभु जब भी अवतरण लेते हैं, तो वे संसार को ये संदेश देना चाहते हैं कि जीवन का क्या आदर्श होना चाहिए और मनुष्य जन्म लेकर अपने जीवन में परमात्मा की अविच्छिन्न शक्ति का प्रतीक बनकर संसार में सद्कार्य कर सकता हैं। असंभव को सम्भव कर सकता हैं, एक-एक कर अपने मार्ग में आने वाली बाधाओं को मिटा सकता हैं। उसके जीवन में भी प्रेम, करुणा, मोह गृहस्थ सब कुछ होगा, इन सब स्थितियों के साथ वह सात्विकता की ओर अग्रसर हो सकता हें, पूर्णत्व की ओर अग्रसर हो सकता हैं।

यह तो द्रष्टा पर निर्भर करता है, कि वह अपने आराध्य को किस रूप में देखता हैं। और इन अवतरणों का क्रम बढ़ता हुआ इस युग में पुनः सम्भव हुआ पूज्य 'डॉ नारयण दत्त श्रीमाली जी' के रूप में। पूज्य सदगुरुदेव अपने परिवार के लिए पिता, भाई आदि स्वरुप में प्रिय बने, तो वहीं उनके शिष्यों ने उन्हें सदगुरुदेव, प्रभु, इष्ट, मंत्रज्ञ, तन्त्रज्ञ, ज्योतिषविद तथा अन्य रूपों में आत्मसात किया हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में व्यास मुनि ने स्पष्ट लिखा है, कि भगवान् के अवतारों स्वरुप में दस गुण अवश्य ही परिलक्षित होंगे और इन्हीं दस गुणों के आधार पर संसार उन्हें पहिचानेगा।

तपोनिष्ठः मुनिश्रेष्ठः मानवानां हितेक्षणः ।
ऋषिधर्मत्वमापन्नः योगी योगविदां वरः
दार्शनिकः कविश्रेष्ठः उपदेष्टा नीतिकृत्तथा ।
युगकर्तानुमन्ता च निखिलः निखिलेश्वरः ॥
एभिर्दशगुणैः प्रीतः सत्यधर्मपरायणः ।
अवतारं गृहीत्वैव अभूच्च गुरुणां गुरुः ॥

सदगुरुदेव पूज्यपाद डॉ नारायणदत्त श्रीमाली जी, संन्यासी स्वरुप निखिलेश्वरानंद जी का विवेचन आज यदि महर्षि व्यास द्वारा उध्दत दस गुणों के आधार पर किया जाए, तो निश्चय ही सदगुरुदेव अवतारी पुरूष हैं, जिन्होनें अपने सांसारिक जीवन का प्रारम्भ एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में किया - सुदूर पिछडा रेगिस्तानी गांव था। जब इनका जन्म हुआ तो माता-पिता को प्रेरणा हुई, कि इस बालक का नाम रखा जाए - 'नारायण'।

यह नारायण नाम धारण करना और उस नारायण तत्व का निरंतर विस्तार केवल युगपुरुष नारायण दत्त श्रीमाली के लिए ही सम्भव था, जिन्होनें अपने अल्पकालीन भौतिक जेवण में शिक्षा का उच्चतम आयाम ग्रहण कर पी.एच.डी. अर्थात डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की।
- योगी विश्वेश्रवानन्द

श्री नारायण दत्त श्रीमालीजी - भाग २

परमपूज्य सदगुरुदेव डॉ नारायण दत्त श्रीमाली जी एक ऐसे उदात्ततम व्यक्तित्व हें, जिनके चिन्तन मात्र से ही दिव्यता का बोध होने लगता हैं। प्रलयकाल में समस्त जगत को अपने भीतर समाहित किए हुए महात्मा हिरण्यगर्भ की तरह शांत और सौम्य हैं। व्यवहारिक क्षेत्र में स्वच्छ धौत वस्त्र में सुसज्जित ये जितने सीधे-सादे से दिखाई देते हैं, इससे हट कर कुछ और भी हैं, जो सर्वसाधारण गम्य नहीं हैं। साधनाओं के उच्चतम सोपान पर स्थित विश्व के जाने-मने सम्मानित व्यक्तित्व हैं। इनका साधनात्मक क्षेत्र इतना विशालतम है, कि इसे सह्ब्दों के माध्यम से आंका नहीं जा सकता। किसी भी प्रदर्शन से दूर हिमालय की तरह अडिग, सागर की तरह गंभीर, पुष्पों की तरह सुकोमल और आकाश की तरह निर्मल हैं।

इनके संपर्क में आया हुआ व्यक्ति एक बार तो इन्हें देखकर अचम्भे में पड़ जाता हैं, कि ये तो महर्षि जह्नु की तरह अपने अन्तस में ज्ञान गंगा के असीम प्रवाह को समेटे हुए हैं।
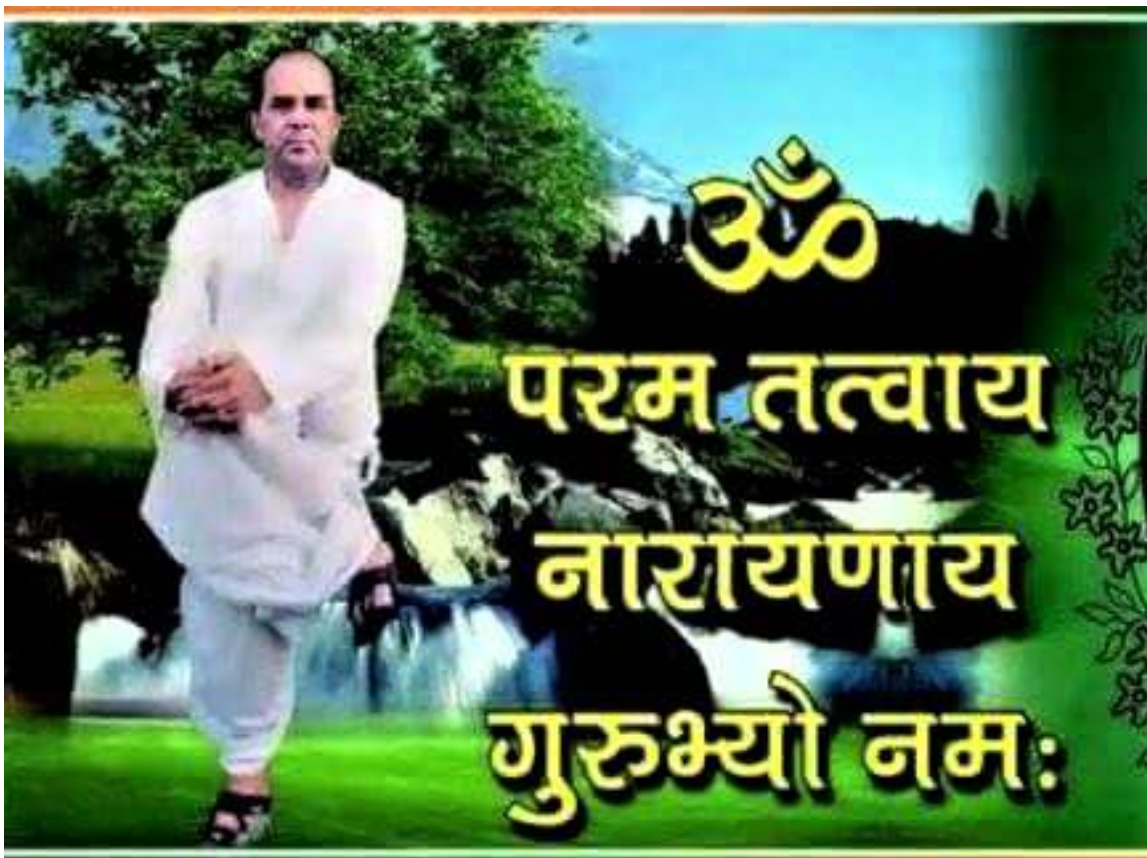
पूज्य गुरुदेव ऋषिकालीन भारतीय ज्ञान परम्परा की अद्वितीय कड़ी हैं। जो ज्ञान मध्यकाल में अनेक-प्रतिघात के कारण अविच्छिन्न हो, निष्प्राण हो गया था, जिस दिव्य ज्ञान की छाया तले समस्त जाति ने सुख, शान्ति एवं आनंद का अनुभव किया था, जिसे ज्ञान से संबल पाकर सभी गौरवान्वित हुए थे। तथा समस्त विसंगतियों को परास्त करने में सक्षम हुए थे, जिस ज्ञान को हमारे ऋषियों ने अपनी तपः ऊर्जा से सबल एवं परिपुष्ट करके जन कल्याण के हितार्थ स्वर्णिम स्वप्न देखे थे... पूज्यपाद सदगुरुदेव श्रीमाली जी ने समाज की प्रत्येक विषमताओं से जूझते हुए, अपने को तिल-तिल जलाकर उसी ज्ञान परम्परा को पुनः जाग्रत किया है, समस्त मानव जाति को एक सूत्र में पिरोकर उन्होनें पुनः उस ज्ञान प्रवाह को साधनाओं के माध्यम से आप्लावित किया है। मानव कल्याण के लिए अपनी आंखों में अथाह करुणा लिए उन्होनें मंत्र और तंत्र के माध्यम से, ज्योतिष, कर्मकाण्डएवं यज्ञों के माध्यम से, शिविरों तथा साधनाओं के माध्यम से उन्होनें इस ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाया हैं। ऐसे महामानव, के लिए कुछ कहने और लिखने से पूर्व बहुत कुछ सोचना पङता है। जीवन के प्रत्येक आयाम को स्पर्श करके सभी उद्वागों से रहित, जो राम की तरह मर्यादित, कृष्ण की तरह सतत चैतन्य, सप्तर्षियों की तरह सतत भावगम्य अनंत तपः ऊर्जा से संवलित ऐसे सदगुरू डॉ नारायण दत्त श्रीमाली जी का ही संन्यासी स्वरुप स्वामी योगिराज परमहंस निखिलेश्वरानंद जी हैं। निखिल स्तवन के एक-एक श्लोक उनके इसी सन्यासी स्वरुप का वर्णन हैं।

बाहरी शरीर से भले ही वे गृहस्थ दिखाई दें, बाहरी शरीर से वे सुख और दुःख का अनुभव करते हुए, हंसते हुए, उसास होते हुए, पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए या शिष्यों के साथ जीवन का क्रियाकलाप संपन्न करते हों, परन्तु यह तो उनका बाहरी शरीर है। उनका आभ्यंतरिक शरीर तो अपने-आप में चैतन्य, सजग, सप्राण, पूर्ण योगेश्वर का है, जिनको एक-एक पल का ज्ञान है और उस दृष्टि से वे हजारों वर्षों की आयु प्राप्त योगीश्वर हैं, जिनका यदा-कदा ही जन्म पृथ्वी पर हुआ करता है।

एक ही जीवन में उन्होनें प्रत्येक युग को देखा है, त्रेता को, द्वापर को, और इससे भी पहले वैदिक काल को। उनको वैदिक ऋचाएं कंठस्थ हैं, त्रेता के प्रत्येक क्षण के वे साक्षी रहे हैं।

लगभग १५०० वर्षों का मैं साक्षीभूत शिष्य हूँ, और मैंने इन १५०० वर्षों में उन्हें चिर यौवन, चिर नूतन एक सन्यासी रूम में देखा है। बाहरी रूप में उन्होनें कई चोले बदले, कई स्थानों में जन्म लिया, पर यह मेरा विषय नहीं था, मेरा विषय तो यह था, कि मैं उनके आभ्यन्तरिक जीवन से साक्षीभूत रहूं, एक संन्यासी जीवन के संसर्ग में रहूं और वह संन्यासी जीवन अपन-आप उच्च, उदात्त, दिव्य और अद्वितीय रहा हैं।

उन्होनें जो साधनाएं संपन्न की हैं, वे अपने-आप में अद्वितीय हैं, हजारों-हजारों योगी भी उनके सामने नतमस्तक रहते हैं, क्योंकि वे योगी उनके आभ्यन्तरिक जीवन से परिचित हैं, वे समझते हैं कि यह व्यक्तित्व अपने-आप में अद्वितीय हैं, अनूठा हैं, इनके पास साधनात्मक ज्ञान का विशाल भण्डार हैं, इतना विशाल भण्डार, कि वे योगी कई सौ वर्षों तक उनके संपर्क और साहचर्य में रहकर भी वह ज्ञान पूरी तरह से प्राप्त नहीं कर सके। प्रत्येक वेद, पुराण , स्मृति उन्हें स्मरण हैं, और जब वे बोलते हैं, तो ऐसा लगता है जैसे स्वयं ब्रह्मा अपने मुख से वेद उच्चारित कर रहे हों, क्योंकि मैंने उनके ब्रह्म स्वरुप को भी देखा हैं, रुद्र स्वरुप को भी देखा है, और रौद्र स्वरुप का भी साक्षी रहां हू।

आज भी सिद्धाश्रम का प्रत्येक योगी इस बात को अनुभव करता है, की 'निखिलेश्वरानंद' जी नहीं है, तो सिद्धाश्रम भी नहीं है, क्योंकि निखिलेश्वरानंद जी उस सिद्धाश्रम के कण-कण में व्याप्त है। वे किसी को दुलारते हैं, किसी को झिड करते हैं, किसी को प्यार करते हैं, तो केवल इसलिए की वे कुछ सीख लें, केवल इसलिए की वे कुछ समझ ले, केवल इसलिए कि वह जीवन में पूर्णता प्राप्त कर ले, और योगीजन उनके पास बैठ कर के अत्यन्त शीतलता का अनुभव करते हैं। ऐसा लगता है, कि एक साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पास बैठे हों, एक साथ हिमालय के आगोश में बैठे हों, एक साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समेटे हुए जो व्यक्तित्व हैं, उनके पास बैठे हों। वास्तव में 'योगीश्वर निखिलेश्वरानन्द' इस समस्त ब्रह्माण्ड की अद्वितीय विभूति हैं।

राम के समय राम को पहिचाना नहीं गया, उस समय का समाज राम की कद्र, उनका मूल्यांकन नहीं कर पाया, वे जंगल-जंगल भटकते रहे। कृष्ण के साथ भी ऐसा हुआ, उनको पीड़ित करने की कोई कसार बाकी नहीं राखी और एक क्षण ऐसा भी आया, जब उनको मथुरा छोड़ कर द्वारिका में शरण लेनी पडी और उस समय के समाज ने भी उनकी कद्र नहीं की। बुद्ध के समय में जीतनी वेदना बुद्ध ने झेली, समाज ने उनकी परवाह नहीं की। महावीर के कानों में कील ठोक दी गईं, उन्हें भूकों मरने के लिए विवश कर दिया गया, समाज ने उनके महत्त्व को आँका नहीं।

यदि सही अर्थों में 'श्रीमाली जी' को समझना है, तो उनके निखिलेश्वरानन्द स्वरुप समझना पडेगा। इन चर्म चक्षुओं से उन्हें नहीं पहिचान सकते, उसके लिए, तो आत्म-चक्षु या दिव्या चक्षु की आवश्यकता हैं।

मैंने ही नहीं हजारों संन्यासियों ने उनके विराट स्वरुप को देखा है। कृष्ण ने गीता में अर्जुन को जिस प्रकार अपना विराट स्वरुप दिखाया, उससे भी उच्च और अद्वितीय ब्रह्माण्ड स्वरुप मैंने उनका देखा है, और एहेसास किया है कि वे वास्तव में चौसष्ट कला पूर्ण एक अद्वितीय युग-पुरूष हैं, जो किसी विशेष उद्देश्य को लेकर पृथ्वी गृह पर आए हैं। मैं अकेला ही साक्षी नहीं हूं, मेरे जैसे हजारों संन्यासी इस बात के साक्षी हैं, कि उन्हें अभूतपूर्व सिद्धियां प्राप्त हैं। भले ही वे अपने -आप को छिपाते हों, भले ही वे सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं करते हों, मगर उनके अन्दर जो शक्तियां और सिद्धियां निहित हैं, वे अपने-आप में अन्यतम और अद्वितीय हैं।

एक जगह उन्होनें अपनी डायरी में लिखा हैं --
"मैं तो एक सामान्य मनुष्य की तरह आचरण करता रहा, लोगों ने मुझे भगवान् कहा, संन्यासी कहा, महात्मा कहा, योगीश्वर कहा, मगर मैं तो अपने आपको एक सामान्य मानव ही समझता हूँ। मैं उसी रूप में गतिशील हूं, लोग कहें तो मैं उनका मुहबन्द नहीं सकता, क्योंकि जो जीतनी गहराई में है, वह उसी रूप में मुझे पहिचान करके अपनी धारणा बनाता हैं। जो मुझे उपरी तलछट में देखता है, वह मुझे सामान्य मनुष्य के रूप में देखता हैं, और जो मेरे आभ्यंतरिक जीवन को देखता है, वह मुझे 'योगीश्वर' कहता है, 'संन्यासी' कहता है। यह उनकी धारणा है, यह उनकी दृष्टि है, यह उनकी दूरदर्शिता है। जो मेरी आलोचना करते हैं, उनको भी मैं कुछ नहीं कहता, और जो मेरा सम्मान करते हैं, मेरी प्रशंसा करते हैं, उनको भी मैं कुछ नहीं कहता, और जो मेरा सम्मान करते हैं, मेरी प्रशंसा करते हैं, उनको भी मैं कुछ नहीं कहता, क्योंकि मैं सुख-दुःख, मान-अपमान इन सबसे सर्वथा परे हूं।

मैंने कोई दावा नहीं किया, कि मैं दस हजार वर्षों की आयु प्राप्त योगी हूं, और न ही मैं ऐसा दावा करता हूं, कि मैंने भगवे वस्त्र धारण कर संन्यासी रूप में विचरण किया, हिमालय गया, सिद्धियां प्राप्त कीं, या मैं कोई चमत्कारिक व्यक्तित्व या मैं कोई

अद्वितीय कार्य संपन्न किया है। मैं तो एक सामान्य मनुष्य हूं और सामान्य मनुष्य की तरह ही जीवन व्यतीत करना चाहता हूं।" डायरी के ये अंश उनकी विनम्रता है, यह उनकी सरलता है, परन्तु जो पहिचानने की क्षमता रखते हैं - उनसे यह छिपा नहीं है, के वे ही वह अद्वितीय पुरूष हैं, तो कई हजार वर्षों बाद पृथ्वी पर अवतरित होते हैं।
--योगी विश्वेश्रवानंद

श्री नारायण दत्त श्रीमालीजी - भाग ३

परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी का व्यक्तित्व अपने-आप में अप्रतिम, अदभुतऔर अनिर्वचनीय रहा है। उनमें हिमालय सी ऊंचाई है, तो सागरवत गहराई भी; साधना के प्रति वे पूर्णतः समर्पित व्यक्तित्व हैं, तो जीवन के प्रति उन्मुक्त सरल और सहृदय भी; वेद, कर्मकांड और शास्त्रों के प्रति उनका अगाध और विस्तृत ज्ञान है, तो मंत्रों और तंत्रों के बारे में पूर्णतः जानकारी भी। यह एक पहला ऐसा व्यक्तित्व है जिसमें प्रत्येक प्रकार की साधनाएं समाहित हैं, उच्चकोटि के वैदिक और दैविक साधनाओं में जहां वे अग्रणी हैं, वहीं औघड शमशान और साबर साधनाओं में भी अपने-आप में अन्यतम हैं।

मैंने उन्हें हजारों-लाखों की भीड़ में प्रवचन देते हुए सूना है। उनका मानस अपने-आप में संतुलित है, किसी भी विषय पर नपे-तुले शब्दों में अजस्त्र, अबाध गति से बोलते रहते हैं। लीक सी एक इंच भी इधर-उधर नहीं हटते। मूल विषय पर, विविध विषयों की गहराई उनके सूक्ष्म विवेचन और साधना सिद्धियों को समाहित करते हुए वे विषय को पूर्णता के साथ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, कि सामान्य मनुष्य भी सुनकर समझ लेता है और मंत्रमुग्ध बना रहता है।

मैं उनके संन्यास और गृहस्थ दोनों ही जीवन का साक्षी हूंहजारों संन्यासियों के भीड़ में भी उन्हें बोलते हुए सूना है उच्चस्तरीय विद्वत्तापूर्ण शुद्ध सुसंस्कृत में अजस्त्र, अबाध रूप से और गृहस्थ जीवन में भी उन्हें सरल हिन्दी में बोलते हुए सूना है - विषय को अत्याधिक सरल ढंग से समझाते हुए बीच-बीच में हास्य का पुट देते हुए मनोविनोद के साथ अपनी बात वे श्रोताओं के ह्रदय में पूर्णता के साथ उतार देते हैं।
मुझे उनका शिष्य बनने का सौभाग्य मिला है और मैं इसमें अपने-आप को गौरवान्वित अनुभव करता हूं। उनके साथ काफी समय तक मुझे रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, मैंने उनके अथक परिश्रम को देखा है, प्रातः जल्दी चार बजे से रात्री को बारह बजे तक निरंतर कार्य करते हुए भी उनके शरीर में थकावट का चिन्ह ढूंढने पर भी अनुभव नहीं होता।

वे उतने ही तरोताजा और आनंदपूर्ण स्थिति में बने रहते हैं, उनसे बात करते हुए ऐसा लगता है कि जैसे हम प्रचण्ड ग्रीष्म की गर्मी से निकलकर वट वृक्ष की शीतल छाया में आ गए हों, उनकी बातचीत से मन को शान्ति मिलती है जैसे कि पुरवाई बह रही हो, और सारे शरीर को पुलक से भर गई हो।

जीवंत व्यक्तित्व

ऐसे ही अद्वितीय वेदों में वर्णित सिद्धाश्रम के संचालक स्वामी सच्चिदानन्द जी के प्रमुख शिष्य योगिराज निखिलेश्वरानंद है, जिन पर सिद्धाश्रम का अधिकतर भार है। वे चाहे संन्यासी जीवन में हो और चाहे गृहस्थ जीवन में, रात्री को निरंतर नित्य सूक्ष्म शरीर से सिद्धाश्रम जाते हैं, वहां की संचालन व्यवस्था पर बराबर दृष्टि रखते हैं। यदि किसी साधक योगी या संन्यासी की कोई साधना विषयक समस्या होती है तो उसका समाधान करते हैं और उस दिव्य आश्रम को क्षण-क्षण में नविन रखते हुए गतिशील बनाए रखते हैं। वास्तव में ही आज सिद्धाश्रम का जो स्वरुप है उसका बहुत कुछ श्रेय स्वामी निखिलेश्वरानंद जी को है, जिनके प्रयासों से ही वह आश्रम अपने-आप में जीवंत हो सका।

आयुर्वेद के क्षेत्र में भी उन्होनें उन प्राचीन जडी-बूटियों पौधों और वृक्षों को ढूंढ निकाला है जो कि अपने-आप में लुप्त हो गए थे। वैदिक और पौराणिक काल में उन

वनस्पतियों का नाम विविध ग्रंथों में अलग है परन्तु आप के युग में वे नाम प्रचलित नहीं हैं। अधिकांशजडी-बूटियां काल के प्रवाह में लुप्त हो गई थी।

अपने फार्म में उसी प्रकार का वातावरण बनते हुए उन जडी-बूटियों को पुनः लगाने और विकसित करने का प्रयास किया। मील से भी ज्यादा लम्बा चौडा ऐसा फार्म आज विश्व का अनूठा स्थल है, जहां पर ऐसी दुर्लभ जडी-बूटियों को सफलता के साथ उगाने में सफलता प्राप्त की है, जिनके द्वारा असाध्य से असाध्य रोग दूर किए जा सकते हैं। उनके गुण दोषों का विवेचन, उनकी सेवन विधि, उनका प्रयोग और उनसे सम्बंधित जीतनी सूक्ष्म जानकारी उनको है वह अपने आप में अन्यतम हैं।

पारद के सोलह संस्कार हे नहीं, अपितु चौवन संस्कार द्वारा उन्होनें सिद्ध कर दिया कि इस क्षेत्र में उन्हें जो ज्ञान है वह अपने-आप में अन्यतम है। एक धातु से दुसरे धातु में रूपांतरित करने की विधियां उन्होनें खोज निकाली और सफलतापूर्वक अपार जन समूह के सामने ऐसा करके उन्होनें दिखा दिया कि रसायन क्षेत्र में हम आज भी विश्व में अद्वितीय हैं। कई शिष्यों नें उनके सान्निध्य में रसायन ज्ञान प्राप्त किया है और ताम्बे स्व स्वर्ण बनाकर इस विद्या को महत्ता और गौरव प्रदान किया है।

सिद्धाश्रम के प्राण

सिद्धाश्रम देवताओं के लिए भी दुर्लभ और अन्यतम स्थान है। जिसे प्राप्त करने के लिए उच्चकोटि के योगी भी तरसते हैं। प्रयेक संन्यासी अपने मन में यही आकांक्षा पाले रहता कि जीवन में एक बार सिद्धाश्रम प्रवेश का अवसर मिल जाय। यह शाश्वत पवित्र और दिव्य स्थल, मानसरोवर और कैलाश से भी आगे स्थित है, जिसे स्थूल दृष्टी से देखा जाना सम्भव नहीं। जिनके ज्ञान चक्षु जागृत हैं, जिनके हृदय में सहस्रार का अमृत धारण है, वही ऐसे सिद्ध स्थल को देख सकता है।

ऋग्वेद से भी प्राचीन यह स्थल अपने-आप में महिमामण्डितहै। विश्व में कई बार सृष्टि का निर्माण हुआ और कई बार प्रलय की स्थिति बनी, पर सिद्धाश्रम अपने-आप में अविचल स्थिर रहा। उस पर न काल का कोई प्रभाव पड़ता है न वातावरण अथवा जलवायु का। वह इन सबसे परे आगम्यऔर अद्वितीय है। ऐसे स्थान पर जो योगी पहुंच जाता है, वह अपने आप में अन्यतम और अद्वितीय बन जाता है।

महाभारत कालीन भीष्म, कृपाचार्य, युधिष्ठिर, भगवान् कृष्ण, शंकराचार्य, गोरखनाथ आदि योगी आज भी वहां सशरीर विचरण करते देखे जा सकते हैं, अन्यतम योगियों में स्वामी सच्चिदानन्द जी, महर्षि भृगु आदि हैं, जिनका नाम स्मरण ही पुरे जीवन को पवित्र और दिव्य बनने के लिए पर्याप्त है।

यह मीलों लंबा फैला हुआ सिद्धि क्षेत्र अपने-आप में अद्वितीय है। जहा न रात होती है और न दिन। योगियों के शरीर से निकलने वाले प्रकाश से यह प्रतिक्षण आलोकित रहता है। गोधूली के समय जैसा चित्तार्शक दृश्य और प्रकाश व्याप्त होता है ऐसा प्रकाश वहां बारहों महीने रहता है। उस धरती पर सर्दी गर्मी आदि का कोई प्रभाव प्रतीत नहीं होता। ऐसे सिद्धाश्रम पर रहने वाले योगी कालजयी होते हैं, उन पर ज़रा मृत्यु आदि का प्रभाव व्याप्त नहीं होता।

यह उनके ही प्रबल पुरुषार्थ का फल है कि सिद्धाश्रम अपने-आप में जीवन्त स्थल है, जहां मस्ती आनन्द, उल्लास, उमंग और हलचल है गति है जहां चेतना और आज सिद्धाश्रम को देखने पर ऐसा लगता हैं कि यह नन्दन कानन से भी ज्यादा सुखकर और आनन्ददायक है।

एक मृतप्राय सा सिद्धाश्रम उनके आने से ही आनन्दमय हो गया और सही अर्थों में सिद्धाश्रम बन गया। सिद्धाश्रम में उच्चकोटि के योगी वशिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग, कणाद, आद्य शंकराचार्य, कृष्ण आदि सभी विद्यमान हैं। उच्चकोटि के योगी पृथ्वी पर अपना कार्य पूरा करने के बाद यह बाहरी नश्वर शरीर छोड़ कर हमेशा हमेशा के लिए सिद्धाश्रम चले जाते हैं। सिद्धाश्रम के श्रेष्ठ योगीजन आंखें बिच्चा बैठे रहते हैं, कि कब निखिलेश्वरानंद जी आएं और उनकी चरण धूलि मिले, ऋषि-मुनि अपनी साधनाएं बीच में ही रोककर उस स्थान पर खड़े हो जाते हैं, जहां से निखिलेश्वरानन्द जी गुजरने वाले होते हैं। प्रकृति भी अपने आप में नृत्यमय हो जाती है, क्योंकि सिद्धाश्रम जिस प्राणश्चेतना से गतिशील है, उसी प्राणश्चेतना के आधार हैं, निखिलेश्वरानंद जी।

सिद्धाश्रम, जहां उच्चकोटि की अप्सराएं निरंतर अपने नृत्य से, अपने गायन से, अपने संगीत से पुरे सिद्धाश्रम को गुंजरित बनाएं रखती हैं। एक अदभुद वातावरण है वहां का, ऐसा लगता है, जैसे स्वर्ग भी इसके सामने तुच्छ है और वास्तव में ही स्वर्ग और इंद्र लोक अत्यधिक तुच्छ हैं इस प्रकार के सिद्धाश्रम के सामने, जहां सिद्धयोगा झील गतिशील है, जिसमे स्नान करने से ही समस्त रोग मिट जाते हैं, जिसके किनारे बैठने से ही अपने-आप में सम्पूर्ण पवित्रता का बोध हो जाता है, उसमें अवगाहन करने से ही पूर्ण शीतलता और शान्ति महसूस होने लगती है, इसमें स्नान करने से ही इस देह को, जिस देह में हम गतिशील हैं, तुरंत भान हो जाता है, कि हम पांच हजार साल पहले कौन थे? या तो इस प्रकार के उच्चकोटि के योगियों के पास बैठने से उनके द्वारा ज्ञात हो सकता है या फिर सिद्धयोगा झील में स्नान करने से स्मरण हो जाता हैं।

मैं उनके इस जीवन का साक्षी रहां हूं, और आत्री, कणाद, गौतम, वशिष्ठ सदृश उच्चकोटि के योगी भी निखिलेश्वरानंद जी के व्यक्तित्व को देखकर आल्हादित और रोमांचित हो उठाते हैं। उनके जीवन का स्वप्न ही यह रहता है, कि निखिलेश्वरानंद जी के साथ रहे, उनसे बात-चीत करें और उनकी बात-चीत के प्रत्येक अंश में कोई न

कोई साधना निहित रहती हैं। वास्तव में देखा जाए, तो वे योगियों में परम श्रेष्ठ, अदभुद, तेजस्वी एवं अद्वितीयता लिए हुए महामानव हैं।

जो योगीजन उनके साथ सिद्धाश्रम गए हैं, उन्होनें उनके व्यक्तित्व को पहिचाना है। उन्होनें देखा है, कि हजारों साल कि आयु प्राप्त योगी भी, जब 'स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी' सिद्धाश्रम में प्रवेश करते हैं, तो अपनी तपस्या बीच में ही भंग करके खड़े हो जाते हैं, और उनके चरणों को स्पर्श करने के लिए एक रेलम-पेल सी मच जाती है, चाहे साधक-साधिकाएं हों, चाहे योगी हों, चाहे अप्सराएं हों, सभी में एक ललक, एक ही पुलक, एक ही इच्छा, आकांक्षा होती है, कि 'स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी' के चरणों को स्पर्श कर लिया जाए, जो गंगा की तरह पवित्र हैं, जो कि अपने-आप में पूज्य हैं, जिनके चरण-स्पर्श अपने-आप में वन्दनीय हैं, जो कि अपने-आप में पूज्य हैं, जिनके चरण-स्पर्श अपने-आप में ही अहोभाग्य हैं, और वे जिस रास्ते से गुजर जाते हैं, जहां-जहां उनके चरण-चिन्ह पड़ते हैं, वहां की धूलि उठाकर उच्चकोटि के संन्यासी, योगी ओने ललाट पर लगाते हैं, साधिकाएं उस माटी को चंदन की तरह अपने शरीर मर लगाती हैं और अपने आप को धन्य-धन्य अनुभव करती हैं।

वे किसी को भी अपने साथ सिद्धाश्रम ले जा सकते हैं, चाहे वह किसी भे जाती, वर्ग, भेद, वर्ण, लिंग का स्त्री, पुरूष हो, इसके लिए सिद्धाश्रम से उन्हें एक तरंग प्राप्त होती है, एक आज्ञा प्राप्त होती है, फिर स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी उस व्यक्तित्व को चाहे उसने साधना की हो या न की हो, अपने साथ ले जाते हैं, परन्तु उनके साथ वही जा सकता हैं, जो भाव से समर्पित शिष्य हो।
-योगी विश्वेश्रवानंद

....

श्री नारायण दत्त श्रीमालीजी - भाग ४

सिद्धाश्रम के संचालक, 'परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी है', वे तो अपने-आप में अन्यतम,अद्वितीय विभूति हैं, समस्त देवताओं, के पुंझ से एकत्र होकर के उनका निर्माण हुआ है, सब देवताओं ने अपना-अपना अंश देकर के ऐसे अदभुद व्यक्तित्व का विकास किया है, जिन्हें सच्चिदानन्द जी कहते हैं।

परमहंस, प्रातः स्मरणीय 'पूज्यपाद स्वामी सच्चिदानन्द जी' के आशीर्वाद तले ऐसा सिद्धाश्रम गतिशील है, जहां की माटी कुंकुम की तरह है, जिसे ललाट पर लगाने की इच्छा की जाती है, जहां पर महाभारत काल और त्रेता युग के योगी व् सन्यासी निरंतर विचरण करते हैं, गतिशील हैं।

सच्चिदानन्द जी ने हजारों साल के अपने जीवन में केवल तीन ही शिष्य बनाएं हैं, अत्यन्त कठोर उनकी क्रिया है, जो उन क्रियाओं पर खरा उतरता है, उसे वे अपना शिष्यत्व प्रदान करते हैं। पूज्य गुरुदेव ऐसे ही अदभुद व्यक्तित्व हैं, जिन्होनें पूर्णता के साथ 'स्वामी सच्चिदानन्द जी' से दीक्षा प्राप्त की हैं, और पूरा सिद्धाश्रम ही नहीं वरन पूरा ब्रह्माण्ड इस बात के लिए गौरवान्वित है, कि वे 'स्वामी सच्चिदानन्द जी' के शिष्य है।
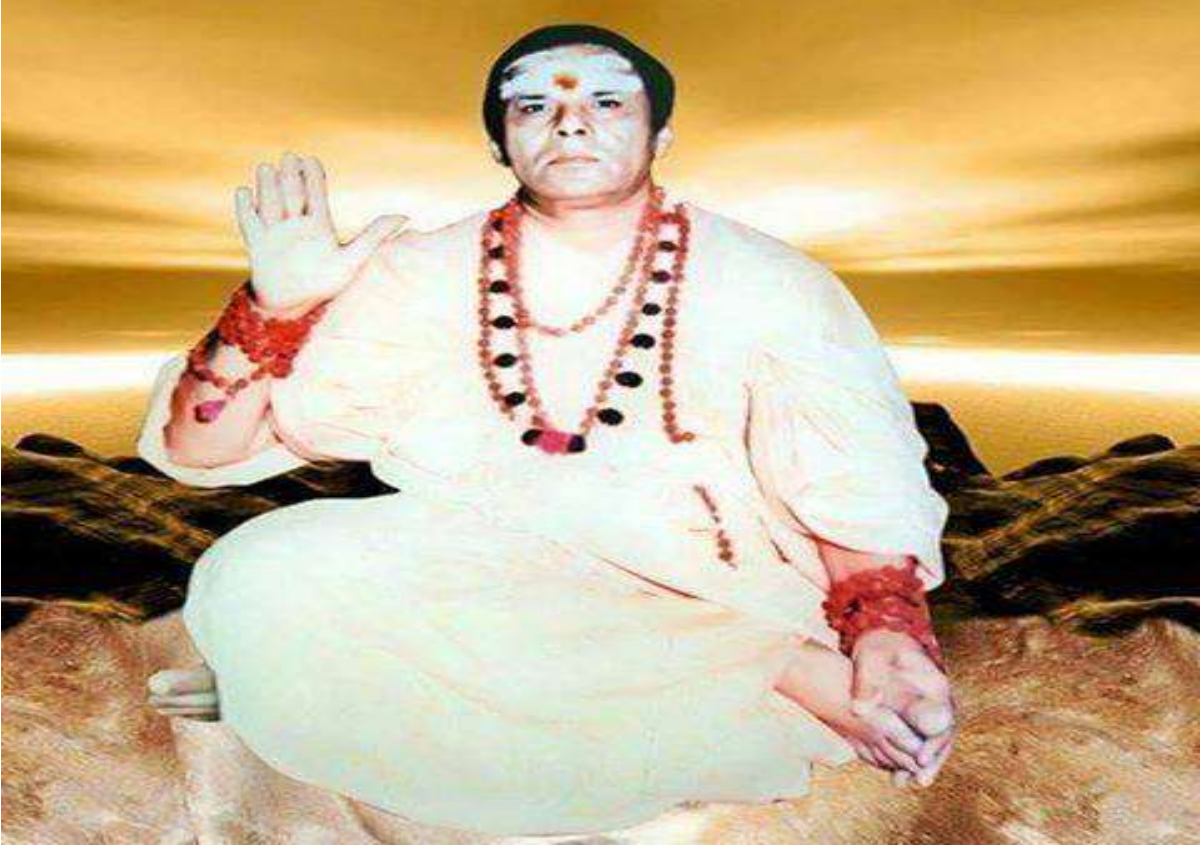
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनका विचरण स्थल है

यही नहीं अपितु कई संन्यासियों ने उन्हें इंद्र लोक, पाताल लोक, सूर्य लोक, चन्द्रमा तथा अन्य लोकों में विचरण करते हुए देखा है। शुक्र ग्रह में कई योगी उनके साथ गाएं हैं, क्योंकि ये सूक्ष्म शरीर को इतना उंचा उठा लेते है, कि ये ब्रह्माण्ड का एक भाग बन जाते हैं, और उस भाग से वे समस्त ग्रहों में विचरण करते रहते हैं, उनका बाहरी शरीर यहीं पडा रहता हैं एक सामान्य शरीर की तरह, मगर आभ्यातारिक शरीर समस्त ग्रहों का प्रतिनिधित्व करता है। शुक्र गृह में उनको देखने के लिए लोग मचल पड़ते हैं, दौड़ते हैं, और उनकी एक झलक देख कर वे अपने-आप को परम सौभाग्यशाली समझते हैं।

मैंने उनके साथ उन लोकों की भी यात्रा की हैं, और यह देखा है कि वे जितने मृत्यु लोक में प्रिय हैं, जितने सिद्धाश्रम में प्रिय हैं, उससे भी ज्यादा शुक्र गृह और अन्य लोकों में प्रिय हैं। सभी लोकों में निरंतर प्रतीक्षा होती रहती हैं। जहां भी मैंने उनको देखा हैं, ऐसा लगता हैं कि यह पुरे ब्रह्माण्ड में बिखरा हुआ व्यक्तित्व है। कोई एक

गृह या एक स्थान ही उनको महत्त्व नहीं देता, अपितु पुरे ब्रह्माण्ड का प्रत्येक गृह उनको महत्त्व देता है। वे अत्यन्त सूक्ष्म शरीर धारण कर सकते हैं और विराट स्वरुप भी धारण कर सकते हैं। वे एक ही क्षण में एक स्थान से दुसरे स्थान पर जाने का सामर्थ्य रखते हैं। वे हिमालय की उंची-उंची चोटियों पर उसी पारकर विचरण करते हैं, जैसे मैदान में चल रहे हों, तथा गहन और गहन गुफाओं में मैंने उनको निरंतर साधना करते हुए अनुभव किया हैं।

साबर साधनाओं के अन्यतम योगी

साबर साधनाएं जीवन की सरल, सहज और मत्वपूर्ण साधना है। ऐसी साधनाएं हैं जिनमे जटिल विधि विधान नहीं है जिनमे लम्बा-चौड़ा विस्तार नहीं है, जिनमे सूक्ष्म-श्लोक संस्र्कुत नहीं अपितु सरल भाषा है। संसार की आठ क्रियाएं ऐसी है जो कई हजार वर्ष पहले पूर्व विकास पर थी परन्तु आज ये विद्याएं प्रायः लुप्त हैं और शायद ही उनके बारे में योगियों को जानकारी होगी। सिद्धाश्रम में इनके बारे में निरंतर शोध हो रही हैं और उन चिन्तनों तथा साधना विधियों को ढूं ढूं निकाला गया है।

मैंने देखा कि इस व्यक्तित्व में असीम प्राण चेतना है, सत्य और वास्तविकता से झूठलाकर इसे दबाया नहीं जा सकता। प्रहार कर इसकी गति को अवरुद्ध नहीं किया जा सकता बहलाकर इसे चुप नहीं किया जा सकता। इसके मन में भारत वर्ष के प्रति आसीम त्याग और आगाध श्रद्धा है। यह भारतवर्ष को पुनः उस स्थिति में ले जाना चाहता है जो कि इसका वास्तविक स्वरुप है। वह ऋषि मुनियों के मन्त्रों साधनाओं और सिद्धियों को सही तरीके से पुनः स्थापित करना चाहता है। ज्योतिष। और आयुर्वेद के खोये हुए स्थान को पुनः दिलाना चाहता है।

उनको देखते ही ऐसा आभास होता है कि जैसे प्राचीन समय का आर्य अपनी पूर्ण शारीरिक क्षमता और ज्ञान गरिमा को लेकर साकार है। शरीर लम्बा-चौड़ा, आकर्षक और चुम्बकीय नेत्र, वाणी में गंभीरता और गरिमा, दृढ़तायुक्त सिंहवत चाल और ह्रदय में पौरुष यह सब मिलाकर एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं जिन्हें हमें अपने जीवन में आर्य कहा है, जो हमारे सही अर्थों में पूर्वज है।

यह व्यक्तित्व अंत्यंत ही सरल, सौम्य और सहज है, किसी प्रकार का आडम्बर या प्रदर्शन इनके जीवन में नहीं हैं, आतंरिक और बाह्य जीवन में किसी प्रकार का कोई लुकाव छिपाव नहीं हैं, जो कुछ जीवन में है वही यथार्थ में है, और यही इसकी विशेषता है।

कभी-कभी तो इनके इस सरल व्यक्तित्व को देखकर खीज होती है। इतने उच्चकोटि का योगी, इतना सरल सहज और सामान्य जीवन व्यतीत करता है कि इन्हें देखकर विश्वास नहीं होता कि यह साधनों के क्षेत्र में अप्रतिम है। सिद्धियों का हजारवा हिस्सा

भी यदि किसी के पास होता है तो वह अहम् के मद में चूर रहता धरती पर पांव ही नहीं रहता।

ज्योतिर्विज्ञान के पुरोधा

ज्योतिष के क्षेत्र में स्वामी निखिलेश्वरानंद जी ने जो काम किया है, वह पूर्ण साधनात्मक संस्था भी नहीं कर सकती। उन्होनें अकेले जितना और जो कुछ कार्य किया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। ज्योतिष की दृष्टि से जन्म कुण्डली में दुसरा भाव द्रव्य से सम्बंधित है। और स्वामी जी ने ज्योतिष के नविन सूत्रों की रचना की। ज्योतिष के उन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया जो आज के युग के अनुरूप है, जो वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था में सही है उन छोटे-छोटे ग्रंथों के माध्यम से उन्होनें पुरे देश में एक चेतना पैदा की। ज्योतिष के प्रति उनके मन में चाह उत्पन्न की, उन्हें विश्वास दिलाया, ज्योतिष के क्षेत्र में नविन कार्य हुए, बिखरे हुए ज्योतिषियों को एक मंच दिया, उन्हें यह समझाया कि यह विज्ञान तभी सफल हो ससकता है जब इसे पूर्ण समर्पित भाव से किया जाए।

आयुर्वेद का आधारभूत व्यक्तित्व

आयुर्वेद के क्षेत्र में योगिराज पूज्य गुरुदेव जी का योगदान बेजोड़ है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखे, तो ज्योतिष और आयुर्वेद दो ही विद्याएं भारतवर्ष के पास थी जिसमें वह पुरे विश्व का अग्रणी था। आज भी विज्ञान के क्षेत्र में विश्व भले ही बहुत आगे बढ़ गया हो, उन्होनें नई से नई टेक्नोलॉजी प्राप्त कर ली है परन्तु इन दोनों क्षेत्रों में आज भी पूरा विश्व भारतवर्ष की और ही देखता है।

सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ तो लगभग लुप्त हो गए थे, जो कुछ ग्रन्थ बच गए थे, उनमें जिन जड़ी-बूटियों का विवरण का वर्णन मिलता था वे आज के युग में ज्ञात नहीं थी। उस समय पर वनौषधियों को संस्कृत नाम से पुकारते थे परन्तु आज उन शब्दों से परिचय ही नहीं है, इसीलिए उन वनौषधियों की न पहिचान हो रही थी और न उसकी सही अर्थों में उपयोग ही हो रहा था।

यह अपने आप में अंधकारपूर्ण स्थिति थी। ऐसी स्थिति में किसी भी वनस्पति को किसी भी नाम की सज्ञा दे दी जाती थी। उदाहरण के लिए तेलियाकंद भारतवर्ष की एक अदभुदएवं आश्चर्यजनक गुणों से युक्त दिव्या औषधि है। पर पीछ वैध सम्मलेन में लगभग १८ व्यक्तोयों ने १८ प्रकार के विभिन्न पौधे लाकर उस सम्मलेन में रखे और सभी ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया किउसने जिस पौधे की खोज की है वह प्रामाणिक और असली तेलियाकंद है जिसका विवरण वर्णन प्राचीन आयुर्वेद ग्रंथों में मिलता है। जबकि वास्तविकता यह थी, कि उसमें से एक भी पौधा तेलियाकंद नहीं था।

ऐसी स्थिति में निखिलेश्वरानंद जी ने उन प्राचीन जड़ी-बूटियों को खोज निकाला, जिसका विवरण वर्णन प्राचीन ग्रंथों में मिलता है उनके चित्र गुन धर्म पहचान आदि की विस्तृत व्याख्या कर समझाया और उन जड़ी-बूटियों से आयुर्वेद जगत को परिचित कराया।

स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी का आधिकांश समय हिमांचल में व्यतीत हुआ है और वे हिमालय के चप्पे-चप्पे से परिचित हैं। प्रत्येक स्थान, उसकी महत्ता उसकी भौगोलिक और पौराणिक स्थिति का ज्ञान तो स्वामी जी को है ही, साथ ही साथ वहां मिलने वाली जड़ी-बूटियों और पेड़-पौधों को भी उन्हें विस्तृत ज्ञान है।

आप ने एक शिष्य के सहयोग से नैनीताल और रानीखेत के बीच एक बहुत बड़ा फार्म तैयार करवाया है जो लगभग एक मील चौड़ा और ढाई मील लंबा है। इस पुरे फार्म में उन दुर्लभ जड़ी-बूटियों को उगाने का प्रयास किया है जो धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है। हिमालय के सुदूर अंचल से ऐसे पौधे लाकर वहां स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उन्होनें एक छोटी सी पुस्तिका भी लिखी है जिसमें उन्होनें उन ६४ दुर्लभ जड़ी-बूटियों का परिचय दिया है जिनका धीरे धीरे लोप हो रहा है। यदि समय रहते उनका सवर्द्धन नहीं हो सका तो निश्चय ही वे पौधे समाप्त हो जायेंगे।

इतना व्यस्त व्यक्तित्व होते हुए भी ऐसे पौधों के प्रति उनका ममत्व देखते ही बनाता है। उन्होनें कुछ पौधों को हिमालय की बहुत ही ऊंचाई से प्राप्त कर बड़ी कठिनाई से उस फार्म में आरोपित किया है और उनका पालन पोषण उसी प्रकार से किया जैसे कि मां अपने शिशु का करती है।

उन्होनें कहां प्रकृति हामारी शत्रु या प्रतिस्पर्धी नहीं अपितु सहायक है। उसके साथ द्वंद्व करके सफलता नहीं पाई जा सकती है, अपितु उसके साथ समन्वय करके ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसी स्थिति को और सिद्धांत को ध्यान में रखकर पूज्य गुरुदेव ने जो साधनाएं स्पष्ट की, उनके माध्यम से योगियों नें आसानी से प्रकृति पर विजय प्राप्त की।
- स्वामी विश्वेश्रवानंद

श्री नारायण दत्त श्रीमालीजी - भाग ५

हमारे पूर्वजों और ऋषियों के पास विशिष्ट सिद्धियां थी, परन्तु उनमें से काल के प्रवाह में बहु कुछ लुप्त हो गईं| उनमें भी बारह सिद्धियां तो सर्वथा लोप हो गईं थी, जिनका केवल नामोल्लेख इधर उधर पढ़ने को मिल जाता था पर उसके बारे में न तो किसी को प्रामाणिक ज्ञान था और न उन्हें ऐसी सिद्धि प्राप्त ही थी| ये इस प्रकार हें –
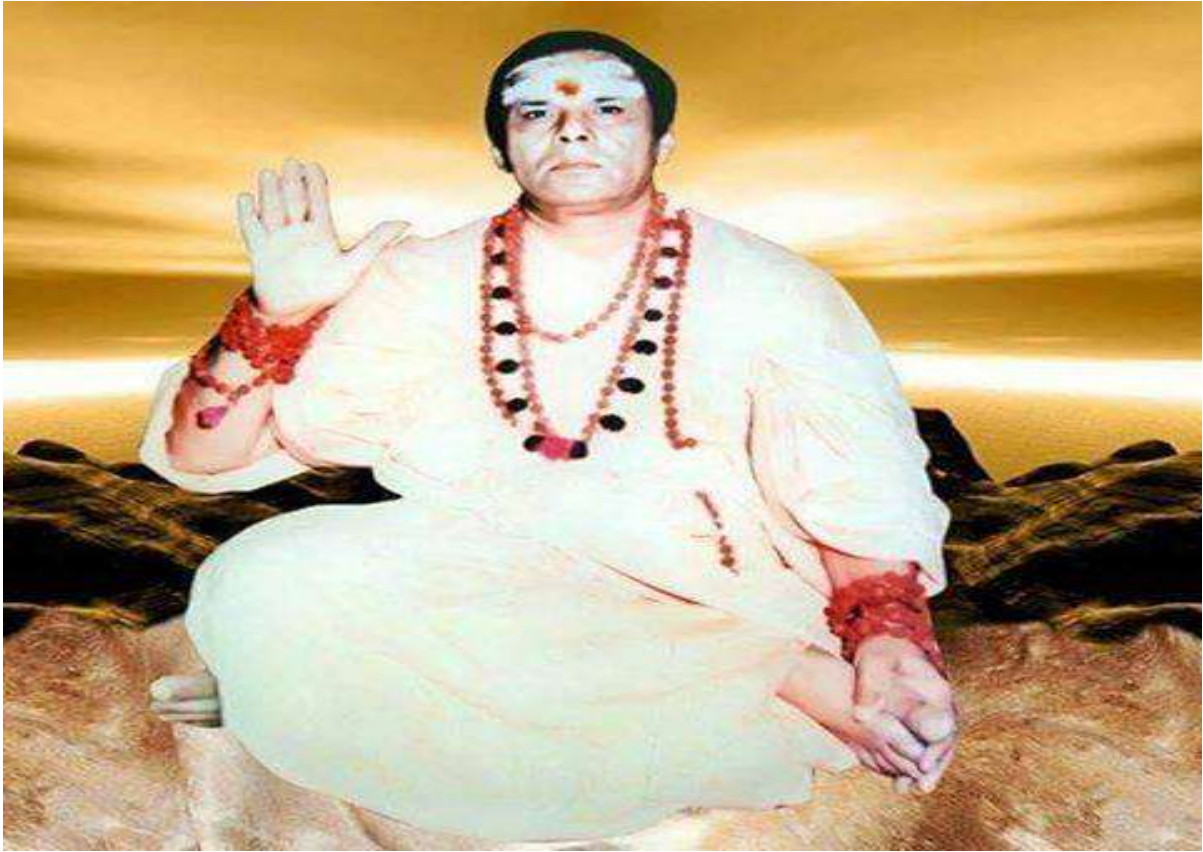
१. परकाया सिद्धि
२. आकाश गमन सिद्धि
३. जल गमन प्रक्रिया सिद्धि;
४ हादी विद्या - जिसके माध्यम से साधक बिना कुछ आहार ग्रहण किये वर्षों जीवित रह सकता है|

५. कादी विद्या - जिसके माध्यम से साधक या योगी कैसी भी परिस्थिति में अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है| उस पर सर्दी, गर्मी, बरसात, आग हिमपात आदि का कोई प्रभाव नहीं होता|

६. काली सिद्धि - जिसके माध्यम से हजारों वर्ष पूर्व के क्षण को या घटना को पहिचाना जा सकता है, देखा जा सकता है और समझा जा सकता है| साठ ही आने वाले हजार वर्षों के कालखण्ड को जाना जा सकता है कि भविष्य में कहां क्या घटना घटित होगी और किस प्रकार से घटित होगी इसके बारे में प्रामाणिक ज्ञान एक ही क्षण में हो जाता है| यही नहीं अपितु इस साधना के माध्यम से भविष्य में होने वाली घटना को ठीक उसी प्रकार से देखा जा सकता है, जिस प्रकार से व्यक्ति टेलेवीजन पर कोई फिल्म देख रहा हों|

७. संजीवनी विद्या, जो शुक्राचार्य या कुछ ऋषियों को ही ज्ञात थी जिसके माध्यम से मृत व्यक्ति को भी जीवन दान दिया जा सकता है|

८. इच्छा मृत्यु साधना - जिसके माध्यम से काल पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है और साधक चाहे तो सैकड़ो-हजारों वर्षों तक जीवित रह सकता है|

९. काया कल्प साधना - जिसके माध्यम से व्यक्ति के शरीर में पूर्ण परिवर्तन लाया जा सकता है और ऐसा परिवर्तन होने पर वृद्ध व्यक्ति का भी काया कल्प होकर वह स्वस्थ सुन्दर युवक बन सकता है, रोग रही ऐसा व्यक्तित्व कई वर्षों तक स्वस्थ रहकर अपने कार्यों में सफलता पा सकता है|

१०. लोक गमन सिद्धि -जिसके माध्यम से पृथ्वी लोक में ही नहीं अपितु अन्य लोकों में भी उसी प्रकार से विचरण कर सकता है जिस प्रकार से हम कार के द्वारा एक स्थान से दुसरे स्थान या एक नगर से दुसरे नगर जाते हें| इस साधना के माध्यम से भू लोक, भुवः लोक, स्वः लोक, महः लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, चंद्रलोक, सूर्यलोक और वायु लोक में भी जाकर वहां के निवासियों से मिल सकता, वहां की श्रेष्ठ विद्याओं को प्राप्त कर सकता है और जब भी चाहे एक लोक से दुसरे लोक तक जा सकता है|

११. शुन्य साधना - जिसके माध्यम से प्रकृति से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है| खाद्य पदार्थ, भौतिक वस्तुएं और सम्पन्नता अर्जित की जा सकती है|

१२. सूर्य विज्ञान - जिसके माध्यम से एक पदार्थ को दुसरे पदार्थ में रूपांतरित किया जा सकता है|

अपने तापोबल से पूज्य निखिलेश्वरानन्द जी ने इन सिद्धियों को उन विशिष्ट ऋषियों और योगियों से प्राप्त किया जो कि इसके सिद्ध हस्त आचार्य थे| मुझे भली भांति स्मरण है कि परकाया प्रवेश साधना, इन्होनें सीधे विश्वामित्र से प्राप्त की थी| साधना के बल पर उन्होनें महर्षि विश्वामित्र को अपने सामने साकार किया और उनसे ही परकाया प्रवेश की उन विशिष्ट साधनाओं सिद्धियों को सीखा जो कि अपने आप में अन्यतम है| शंकराचार्य के समय तक तो परकाया प्रवेश की एक ही विधि प्रचिलित थी जिसका उपयोग भगवदपाद शंकराचार्य ने किया था परन्तु योगिराज निखिलेश्वरानन्द जी ने विश्वामित्र से उन छः विधियों को प्राप्त किया जो कि परकाया प्रवेश से सम्बंधित है| परकाया प्रवेश केवल एक ही विधि से संभव नहीं है अपितु कई विधियों से परकाया प्रवेश हो सकता है| यह निखिलेश्वरानन्द जी ने सैकड़ो योगियों के सामने सिद्ध करके दिखा दिया|

परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी इन बारहों सिद्धियों के सिद्धहस्त आचार्य है| कभी कभी तो ऐसा लगता है कि जैसे यह अलौकिक और दुर्लभ सिद्धियां नहीं उनके हाथ में खिलौने हें, जब भी चाहे वे प्रयोग और उपयोग कर लेते हें| इन समस्त विधियों कों उन्होनें उन महर्षियों से प्राप्त किया है जो इस क्षेत्र के सिद्धहस्त आचार्य और योगी रहे हें|

उन्होनें हिमालय स्थित योगियों, संन्यासियों और सिद्धों के सम्मलेन में दो टूक शब्दों में कहा था कि तुम्हें इन कंदराओं में निवास नहीं करना हें और जंगल में नहीं भटकना हें, इसकी अपेक्षा समाज के बीच जाकर तुम्हें रहना है| उनके दुःख दर्द कों बांटना है, समझना है और दूर करना है|

मैंने कई बार अनुभव किया है, कि उनके दरवाजे से कोई खाली हाथ नहीं लौटा| जिस शिष्य, साधक, योगी या संन्यासी ने जो भी चाहा है उनके यहां से प्राप्त हुआ| गोपनीय से गोपनीय साधनाएं देने भी वे हिचकिचाये नहीं| साधना के मूल रहस्य स्पष्ट करते, अपने अनुभवों कों सुनाते, उन्हें धैर्य बंधाते, पीठ पर हाथ फेरते और उनमें जोश तथा आत्मविश्वास भर देते, कि वह सब कुछ कर सकता है और यही गुण उनकी महानता का परिचय है|

सूर्य सिद्धांत के आचार्य
पतंजलि ने अपने सूत्रों में बताया है, कि सूर्य की किरणों में विभिन्न रंगों की रश्मियों हें और इनका समन्वित रूप ही श्वेत है| इन्हीं रश्मियों के विशेष संयोजन से योगी किसी भी पदार्थ कों सहज ही शुन्य में से निर्मित कर सकता है, या एक पदार्थ कों दुसरे पदार्थ में परिवर्तित कर सकता है| मैंने स्वयं ही गुरुदेव कों अपने संन्यास जीवन में चौबीस वर्तुल वाले एक स्फटिक लेंस से प्रकाश रश्मियों कों परिवर्तित करते देखा है| और पुनः उस स्फटिक वर्तुल हीरक खण्ड कों शुन्य में वापस कर देते हुए देखा है, क्योंकि ये उन्हीं का कथन है, कि योगी अपने पास कुछ भी नहीं रखता| जब जरूरत होती है, तब प्रकृति से प्राप्त कर लेता है और कार्य समाप्त होने पर वह वस्तु प्रकृति कों ही लौट देता है|

शिष्य ज्ञान
मैंने स्वयं ही उन्हें अनेक अवसरों पर अपने पूर्व जन्म के शिष्य-शिष्याओं कों खोजकर पुनः साधनात्मक पथ पर सुदृढ़ करते हुए देखा है| एक बार नैनीताल के किसी पहाड़ी गाँव के निकट हम कुछ शिष्य जा रहे थे| गुरुदेव हम सभी कों लेकर गाँव के एक ब्राह्मण के छोटे से घर में पहुंचे और ब्राह्मण से बोले - 'क्या आठ साल पहले तुम्हारे घर में किसी कन्या ने जन्म लिया था? ब्राह्मण ने आश्चर्यचकित होकर अपनी पुत्री सत्संगा को बुलाया, जिसे देखकर हम सभी चौंक गए| उसका चेहरा थी मां अनुरक्ता की तरह था| यद्यपि मां के चहरे पर झुर्रियां पड़ गई थी और यह अभी

बालिका थी, परन्तु चेहरे में बहुत कुछ साम्य साफ-साफ दिखाई दे रहा था| सत्संगा ने गुरुदेव के सामने आते ही दोनों हाथ जोड़ लिए और ठीक मां की तरह चरणों में झुक गई|

गुरुदेव ने बताया कि किस तरह उनकी शिष्या मां अनुरक्ता ने अपने मृत्यु के क्षणों में उनसे वचन लिया था, कि अगले जन्म में बाल्यावस्था होते ही गुरुदेव उसे ढूंढ निकालेंगे और साधनात्मक पथ पर अग्रसर कर देंगे| यह कन्या सत्संगा वही मां अनुरक्ता हें| गुरुदेव ने उसे दीक्षा प्रदान की, अपने गले की माला उतार कर उसे दी और गुरु मंत्र दे कर वहां से पुनः रवाना हो गए| अपने प्रत्येक शिष्य-शिष्याओं का उन्हें प्रतिपल जन्म से लेकर मृत्यु तक ध्यान रहता हें और उनका प्रत्येक क्षण ही शिष्य के कल्याण के चिन्तन में ही बीतता हें| धन्य हें वे जिनको कि उनका शिष्यत्व प्राप्त हुआ है|

तंत्र मार्ग का सिद्ध पुरुष

सही अर्थों में देखा जाय तो तंत्र भारतवर्ष का आधार रहा है| तंत्र का तात्पर्य व्यवस्थित तरीके से कार्य संपन्न होना| प्रारम्भ में तो तंत्र भारतवर्ष की सर्वोच्च पूंजी बनी रही बाद में धेरे-धीरे कुछ स्वार्थी और अनैतिक तत्व इसमें आ गए, जिन्हें न तो तंत्र का ज्ञान था और न इसके बारे में कुछ विशेष जानते ही थे| देह सुख और भोग को ही उन्होनें तंत्र मां लिया था|

तंत्र तो भगवान् शिव का आधार है| उन्हें द्वारा तंत्र का प्रस्फुटन हुआ| जो कार्य मन्त्रों के माध्यम से संपादित नहीं हो सकता, तंत्र के द्वारा उस कार्य को निश्चित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है| मंत्र का तात्पर्य है प्रकृति की उस विशेष सत्ता को अनुकूल बनाने के लिए प्रयत्न करना और अनुकूल बनाकर कार्य संपादित करना| पर तंत्र के क्षेत्र में यह स्थिति सर्वथा विपरीत है| यदि सीधे-सीधे तरीके से प्रकृति वशवर्ती नहीं होती, तो बलपूर्वक उसे वश में किया जाता है और इसी क्रिया को तंत्र कहते हैं|

तंत्र तलवार की धार की तरह है| यदि इसका सही प्रकार से प्रयोग किया जाय, तो प्रांत अचूक सिद्धाप्रद है पर इसके विपरीत यदि थोड़ी भी असावधानी और गफलत कर दी जाय तो तंत्र प्रयोग स्वयं करता को ही समाप्त कर देता है| ऐसी कठिन चुनौती को निखिलेश्वरानन्द ने स्वीकार किया और तंत्र के क्षेत्र में उन स्थितियों को स्पष्ट किया जो कि अपने-आप में अब तक गोपनीय रही है|

उन्होनें दुर्गम और कठिन साधनाओं को तंत्र के माध्यम से सिद्ध करके दिखा दिया कि यह मार्ग अपेक्षाकृत सुगम और सरल है| स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी तंत्र के क्षेत्र की सभी कसौटिया में खरे उतारे तथा उनमें अद्वितीयता प्राप्त की|

त्रिजटा अघोरी तंत्र का एक परिचित नाम है| पर गुरुदेव का शिष्यत्व पाकर उसने यह स्वाकार किया कि यदि सही अर्थों में कहा जाय तो स्वामी निखिलेश्वरानन्द तंत्र के क्षेत्र में अंतिम नाम है| न तो उनका मुकाबला किया जा सकता है और न ही इस क्षेत्र में उन्हें परास्त किया जा सकता है| एक प्रकार से देखा जाय तो सही अर्थों में वह शिव स्वरुप हैं, जिनका प्रत्येक शब्द अपनी अर्थवत्ता लिए हुई है, जिन्होनें तंत्र के माध्यम से उन गुप्त रहस्यों को उजागर किया है जो अभी तक गोपनीय रहे है| - योगी विश्वेश्रवानंद

काही विधि करूं उपासना

उपासना का मतलब है नजदीक जाना... इतना नजदीक की उसके अन्दर जाना, विस्मृत कर देना अपने-आप को, भूल जाना अपने स्वत्व को।
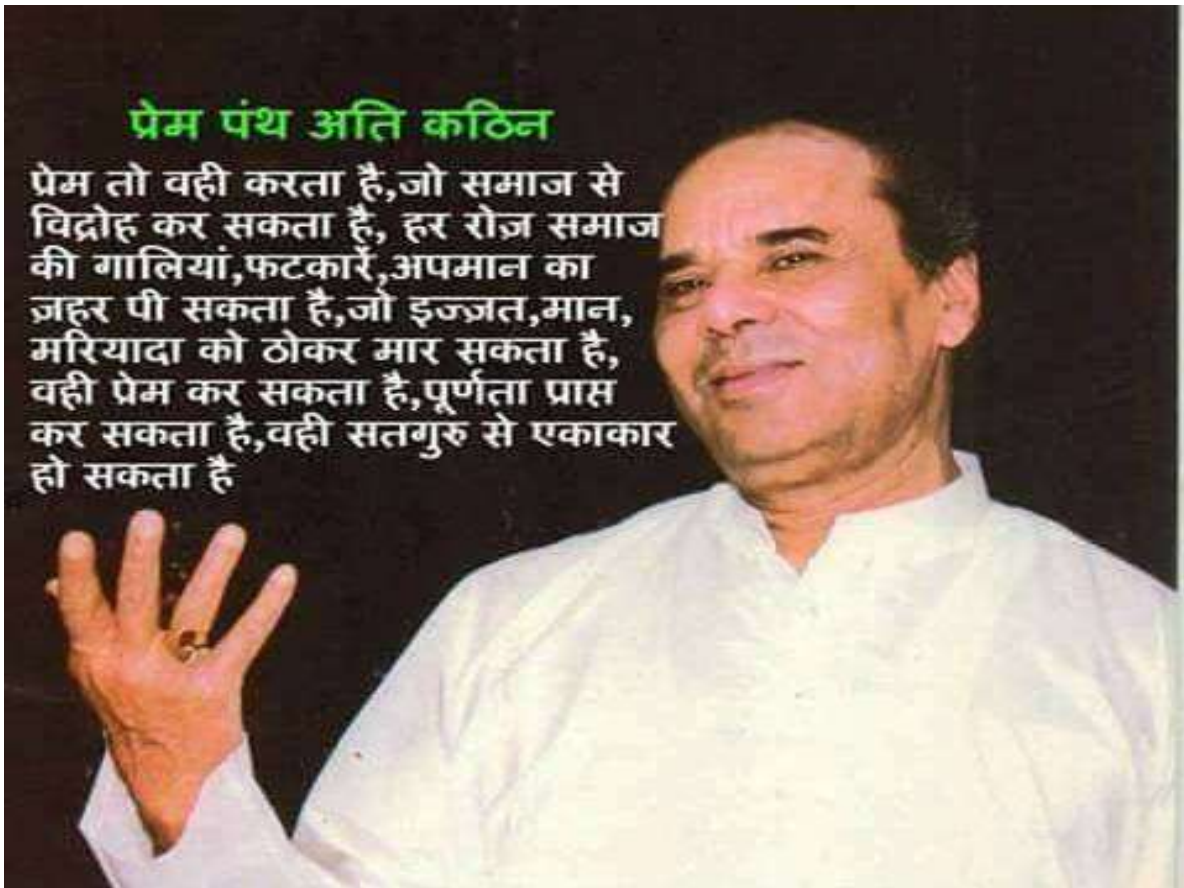
और यह भूलने का भाव, एकाकार हो जाने का भाव प्रेम के द्वारा ही सम्भव है...प्रेम के द्वारा ही जीने और मरने का सलीका आता है, प्रेम के द्वारा ही मर मिटने की उपासना सम्भव है।

और जो मरा नहीं, वह क्या ख़ाक जिया, जिसने विरह के तीर खाए ही नहीं, वह गुरु से क्या एकाकार हो सकेगा, क्या ख़ाक उपासना कर सकेगा –

किसूं काम के थे नहीं, कोई न कौडी देह।
गुरुदेव किरपा करी भाई अमोलक देह ॥
सतगुरु मेरा सुरमा, करे सबद की चोट।
मारे गोला प्रेम का, ढहे भरम का कोट ॥
सतगुरु सबदी तीर है कियो तन मन छेद।
बेदरदी समझे नहीं, विरही पावे भेद ॥

प्रेम, एक धधकता हुआ अंगारा है, जिस पर मोह की राख पड़ गई है... सदगुरु उस पर फूंक मारता है, राख उड़ जाती है, और नीचे से उपासना का अंगार चमकता हुआ निकल आता है।

इसलिए तो खाली प्रार्थना से कुछ भी होना नहीं है, कोरी आंख मूंद लेने से उपासना में सफलता प्राप्ति नहीं हो सकती, इसके लिए जरूरी है गुरु के पास जाना, उनकी उठी हुई बाहों में अपने-आप को समा लेना...तभी आनन्द के अंकुर फुटेंगे, उपासना का राजपथ प्राप्त होगा, और तभी से एकाकार होने की क्रिया संपन्न होगी।

गुरु कहै सो कीजिये, करै सो कीजै नांहि ।
चरनदास की सीख सुन, यही राख मन मांहि ॥
जप- तप- पूजा - पाठ सब, गुरु चरनण के मांहि ।
निस दिन गुरु सेवा करै, फिरू उपासना कांहि ॥
का तपस्या उपासना, जोग जग्य अरु दान ।
चरण दास यों कहत है, सब ही थोथे जान ॥
गुरु ही जप - तप - ध्यान है, गुरु ही मोख निर्वाण ।
चरणदास गुरु नाम ते, नांहि उपासन ज्ञान ॥
हमे तो सदगुरु से यही प्रार्थना करनी चाहिऐ
सदगुरु तुम्हारी रीत है निराली,
सजदा किया मिल गयी प्रेम-प्याली

प्रभु, मेरे गुरुदेव! मै यह भूलूं नहीं, कि तुम सदैव मेरे हृदय में निवास करते हो, तुम्हीं मेरे जीवन के सूत्रधार हो। इस क्षण-क्षण बदलने वाले, पल-पल बनने-मिटने वाले संसार में जो कुछ भी हो रहा है, जो कुछ भी सामने आ रहा है, जो कुछ भी हिल-डुल रहा है और फिर आंखों से ओझल हो रहा है, वह सारा ही तुम्हारी सत्ता से अनुप्राणित है, स्पन्दित है। मेरा मन-प्राण तुम में ही निवास करे और मेरा ऐसा ही ज्ञान, ऐसी ही चेतना बनी रहे कि तुम्हारी इच्छा के सिवा मेरी कोई इच्छा नहीं, कोई गति नहीं, कोई चिन्तन नहीं, कोई आश्रय नहीं, कोई शरण नहीं, कोई अस्तित्व नहीं। यह शरीर तो मृत पिंड है, यह सजीव इसलिए दिखाई दे रहा है कि तुम इसमे बसे हुए हो।

ओ मेरे गुरुवर, मेरे प्राणाधार! मैं अपने हृदय में सतत तुम्हारा आलिंगन-रस पान करता रहूं, जो कुछ करूं तुम्हारी प्रेरणा और संकेत से। तुम्ही मेरे द्वारा अपना-कार्य करो, मेरे हृदय में तुम्हारा ही प्रेम विराजे, तुम्ही प्रेम रूप में विराजो। मेरी बुद्धि में तुम्हीं प्रकाश रूप में बने रहो, मेरे मस्तिष्क में तुम्हीं विचार रूप में रहो, मेरे समस्त अंहकार को अपने में डूबा लो, प्रभु मेरे अन्दर तुम्हारे सिवा कुछ भी रह न जाय, तुम्हीं - तुम रम जाओ।

हे सर्व समर्थ स्वामिन। आपकी कृपा से मैं कहीं भी पहुंच जाऊं, तुम से एकाकार होकर तुम्हारी ही तरह हो जाऊं, परन्तु भूलकर भी मैं यह न मान बैठू कि मैं तुम्हारे सदृश हूं। मैं हूं ही क्या? एक तुच्छ, नगण्य, नाचीज, जो अपनी एक-एक सांस के लिए तुम्हारी कृपा पर अवलंबित है। तुम्हारे अनन्त महासागर के सम्मुख इस कण कि क्या हस्ती है?

प्रभु! मेरा अंहकार तुम ले लो, हे श्रद्धेय, दयामय गुरुवर! मुझे नम्रता, सौम्यता प्रदान करों। तुम्हारी इच्छा मेरे जीवन में पूर्ण हो, तुम्हारी जो इच्छा हो, वही मेरे भीतर-बाहर हो। तुम्ही मेरी साधना हो, तुम्हीं मेरे भीतर सिद्ध होकर अपनी इच्छा पूर्ण करो।

हे नाथ! इस त्रिताप-संन्तप्त संसार में मुझे रखा ही है तो मुझे मेरा मनोवांछित जीवन प्रदान करो। ऐसा हो मेरा जीवन –

बुद्धेनाष्ठ लीना नतेन शिरसा गात्रं सरोमोदगमैः।
काठिन्येन सगददेन नयनोदगीर्णेन वांष्पाम्बुना॥
नित्यं त्वाच्चरणारविन्द्र युगलम ध्यानामृता स्वदिना।
अस्माकं सरसिरुहाक्षम सततं सम्पद हिमम जीवितं॥

हे गुरुदेव। मेरे दोनों हाथ बंधे हुए हो, मस्तक झूका हुआ हो और सारे शरीर में रोमाञ्च हो रहा हो, अंग-प्रत्यंग पुलकित हो रहा हो, मैं आपके चरणों में पूर्ण समर्पित होकर गद-गद कंठ से पार्थना करता रहूं और नेत्रों से आसुओं कि वर्षा हो रही हो। तुम्हारे युगल चरण-कमलों के ध्यानामृत का नित्य ही पान करता रहूं। गुरुवर मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है। ऐसा जीवन मुझे सतत प्रदान करो।

मैंने आकर संसार में धर्म अपना निभाया है,
इसी डगर पे चलकर अब मंजिल पाना है तुम्हे।
मैंने जला दी ज्ञान कि चिंगारी अब तेरे अन्दर
इस चिंगारी को शोला बनाना है तुम्हे।
मैंने दे दिया तुझको वह दीप जो मेरे पास था,

इस दीप को हर दिल में जलाना है तुम्हे।
मेरे पास जो भी है उस पर हक है तुम्हारा,
मैं बाहें फैलाये खडा हूं, आवाज दे रहा हूं तुम्हें।
हमेशा नहीं कह पाऊँगा ये बाते जो कहानी थी तुम्हे।

गुरु पादुका स्तवन

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।
आचार्य सिद्धेश्वर पादुकाभ्यो नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्यः ॥१॥

मैं पूज्य गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ, मेरी उच्चतम भक्ति गुरु चरणों और उनकी पादुका के प्रति हैं, क्योंकि गंगा -यमुना आदि समस्त नदियाँ और संसार के समस्त तीर्थ उनके चरणों में समाहित हैं, यह पादुकाएं ऐसे चरणों से आप्लावित रहती हैं, इसलिए मैं इस पादुकाओं को प्रणाम करता हु, यह मुझे भवसागर से पार उतारने में सक्षम हैं, यह पूर्णता देने में सहायक हैं, ये पादुकाएं आचार्य और सिद्ध योगी के चरणों में सुशोभित रहती हैं, और ज्ञान के पुंज को अपने ऊपर उठाया हैं, इसीलिए ये पादुकाएं ही सही अर्थों में सिद्धेश्वर बन गई हैं, इसीलिए मैं इस गुरु पादुकाओं कोभक्ति भावः से प्रणाम करता हूँ ॥१॥

ऐंकार ह्रींकार रहस्ययुक्त श्रींकारगूढार्थ महाविभूत्या।
ओंकारमर्मप्रतिपादिनीभ्याम नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम ॥2॥

गुरुदेव "ऐंकार" रूप युक्त हैं, जो कि साक्षात् सरस्वती के पुंज हैं, गुरुदेव "ह्रींकार" युक्त हैं, एक प्रकार से देखा जाये तो वे पूर्णरूपेण लक्ष्मी युक्त हैं, मेरे गुरुदेव "श्रींकार" युक्त हैं, जो संसार के समस्त वैभव, सम्पदा और सुख से युक्त हैं, जो सही अर्थों में महान विभूति हैं, मेरे गुरुदेव "ॐ" शब्द के मर्म को समझाने में सक्षम हैं, वे अपने शिष्यों को भी उच्च कोटि कि साधना सिद्ध कराने में सहायक हैं, ऐसे गुरुदेव के चरणों में लिपटी रहने वाली ये पादुकाएं साक्षात् गुरुदेव का ही विग्रह हैं, इसीलिए मैं इन पादुकाओं को श्रद्धा - भक्ति युक्त प्रणाम करता हूँ ॥2॥
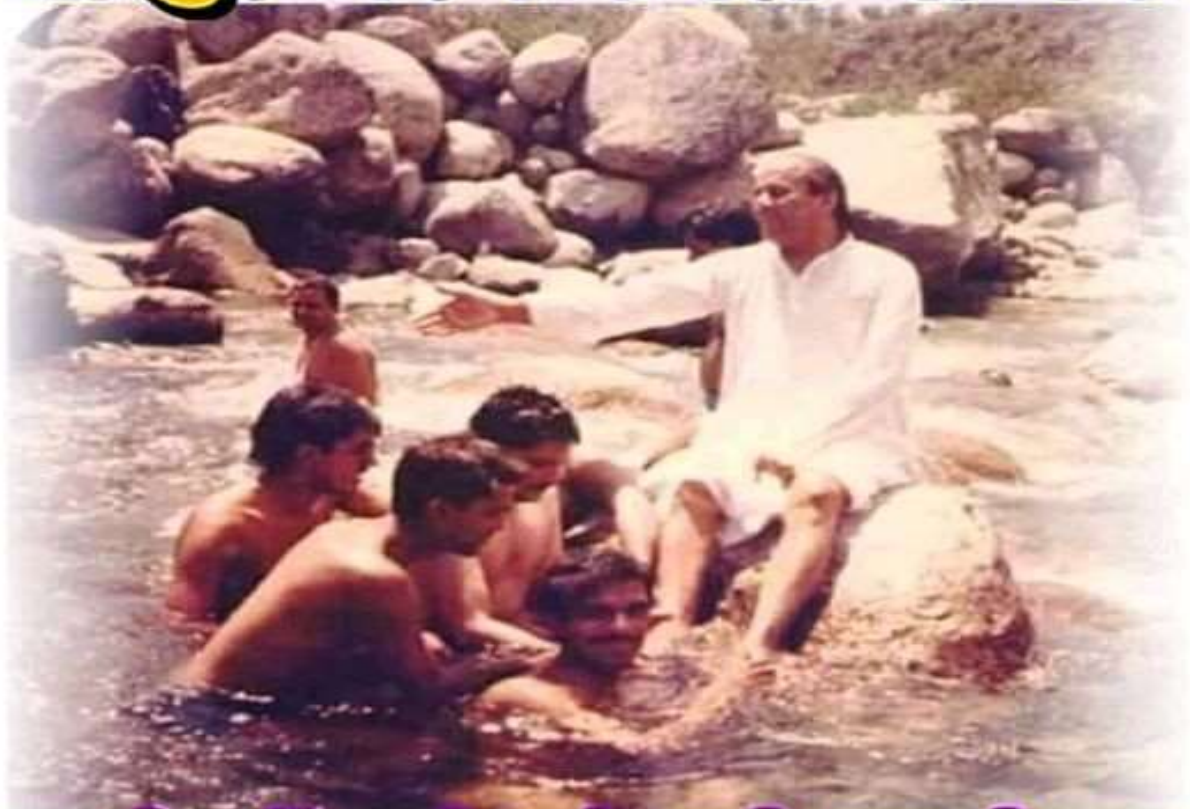
होत्राग्नि होत्राग्निहविश्यहोतृ -होमादिसर्वाकृतिभासमानं ।
यद् ब्रह्म तद्बोधवितारिणीभ्याम नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम ॥३॥

ये पादुकाएं अग्नि स्वरूप हैं, जो मेरे समस्त पापो को समाप्त करने में समर्थ हैं, ये पादुकाएं मेरे नित्य प्रति के पाप, असत्य, अविचार, और अचिन्तन से युक्त दोषों को दूर करने में समर्थ हैं, ये अग्नि कि तरह हैं, जिनका पूजन करने से मेरे समस्त पाप एक क्षण में ही नष्ट हो जाते हैं, इनके पूजन से मुझे करोडो यज्ञो का फल प्राप्त होता हैं, जिसकी वजह से मैं स्वयं ब्रह्म स्वरुप होकर ब्रह्म को पहिचानने कि क्षमता प्राप्त कार सका हूँ, जब गुरुदेव मेरे पास नहीं होते, तब ये पादुकाएं ही उनकी उपस्थिति का आभास प्रदान कराती रहती हैं, जो मुझे भवसागर से पार उतारने में सक्षम हैं, ऐसी गुरु पादुकाओं को मैं पूर्णता के साथ प्रणाम करता हूँ ॥३॥

कामादिसर्पव्रजगारूडाभ्याम विवेक वैराग्य निधिप्रदाभ्याम ।
बोधप्रदाभ्याम द्रुतमोक्षदाभ्याम नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम ॥४॥

मेरे मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार के सर्प विचरते ही रहते हैं, जिसकी वजह से मैं दुखी हूँ, और साधनाओं में मैं पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाता, ऐसी स्थिति में गुरु पादुकाएं गरुड़ के समान हैं, जो एक क्षण में ही ऐसे कामादि सर्पों को भस्म कर देती हैं, और मेरे हृदय में विवेक, वैराग्य, ज्ञान, चिंतन, साधना और सिद्धियों का बोध प्रदान करती हैं, जो मुझे उन्नति की ओर ले जाने में समर्थ हैं, जो मुझे मोक्ष प्रदान करने में सहायक हैं, ऐसी गुरु पादुकाओं को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

अनंत संसारसमुद्रतार नौकायिताभ्यां स्थिरभक्तिदाभ्यां ।
जाड्याब्धिसंशोषणवाड्वाभ्यां नमो नमः श्री गुरुपादुकाभ्याम ॥५॥

यह संसार विस्तृत हैं, इस भवसागर पार करने में ये पादुकाएं नौका की तरह हैं, जिसके सहारे मैं इस अनंत संसार सागर को पार कर सकता हूँ, जो मुझे स्थिर भक्ति देने में समर्थ हैं, मेरे अन्दर अज्ञान की घनी झाडियाँ हैं, उसे अग्नि की तरह जला कर समाप्त करने में सहायक हैं, ऐसी पादुकाओं को मैं भक्ति सहित प्रणाम करता हूँ ॥५॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

मैं तुम्हारें पिछले कई जन्मों का साक्षीभूत हूं **मैंने अपना खून देकर तुम्हें सींचा है **मैं तुम्हारा हर दृष्टी से रखवाला हूं यदि तुम मेरे आत्मीय हो, मेरे प्राणों के घनीभूत हो, मेरे जीवन का रस और चेतना हो तो यह निश्चय ही तुम्हारे लिए उत्सव, आनन्द और सौभाग्य का पर्व है, क्योंकि शिष्य अपने जीवन की पूर्णता तभी पा सकता है, जब वह गुरु ऋण से उऋण हो जाय। मां ने तो केवल तुम्हारी देह को जन्म दिया, पर मैंने उस देह को संस्कारित किया है, उसमें प्रानश्चेतना जाग्रत की है, उस तेज तपती हुई धुप में वासंती बहार का झोंका प्रवाहित किया है, मैंने तपते हुए भूखण्ड पर आनन्द के अमिट अक्षर लिखने की प्रक्रिया की है, और मैंने तुम्हे पुत्र शब्द से भी आत्मीय प्राण शब्द से संबोधित किया है।

और यह गुरु के द्वारा ही सम्भव हो सका है, यह इस जीवन का ही नहीं, कई-कई जन्मों का लेखा-जोखा है। मैं तुम्हारें इस जन्म का साक्षीभूत गुरु ही नहीं हूं, अपितु पिछले २५ जन्मों का लेखा-जोखा, हिसाब-किताब मेरे पास है, और हर बार मैंने तुम्हें आवाज दी है, और तुमने अनसूनी कर दी है, हर बार तुम्हारे प्राणों की चौखट पर दस्तक दी है, और हर बार तुम किवाड़ बंद करके बैठ गए हो, हर बार तुम्हें झकझोरने का, जाग्रत करने का, चैतन्यता प्रदान करने का प्रयास किया है, और हर

बार तुमने अपना मुंह समाज की झूरभुरी रेत में छिपाकर अनदेखा, अनसुना कर दिया है।

पर यह कब तक चलेगा, कितने-कितने जन्मों तक तुम्हारी यह चुप्पी, तुम्हारी यह कायरता, तुम्हारी यह बुजदिली मुझे पीडा पहुंचाती रहेगी, कब तक मैं गला फाड़-फाड़ कर आवाजें देता रहूंगा और तुम अनसुनी करते रहोगे, कब तक मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर सिद्ध योगा झील के किनारे ले जाने का प्रयास करूंगा और तुम हाथ छुडाकर समाज की उस विषैली वायु में साँस लेने के लिए भाग खड़े जाओगे, ऐसा कब तक होगा? इस प्रकार से कब तक गुरु को पीडा पहुंचाते रहोगे, कब तक उसके चित्त पर अपने तेज और नुकीले नाखूनों से घाव करते रहोगे, कब तक उसके प्राणों को वेदना देते रहोगे?

मैंने तुम्हें अपना नाम दिया है, और इससे भी बढ़ कर मैंने तुम्हें अपना पुत्र और आत्मीय कहा है, अपना गोत्र (निखिल गोत्र) तुम्हें प्रदान किया है और अपने जीवन के रस से सींच-सींच कर तुम्हारी बेल को मुरझाने से बचाने का प्रयास किया है, तुम्हारी सूखी हुई टहनियों में रस प्रदान करने का सफलतापूर्वक प्रयास किया है, और मेरा ही यह प्रयत्न है, की इन सूखी हुई टहनियों में फिर नई कोपलें आवें, फिर वातावरण सौरभमय बने, मैंने अपने जीवन के प्रत्येक कषक को इसके लिए लगाया है, अपनी जवानी को हिमालय के पत्थरों पर घिस-घिस कर तुम्हें अमृत पिलाने का प्रयास किया है, तुम्हारें प्रत्येक जन्म में मैंने चेतना देने की कोशिश की है, और हर बार

तुम्हारे मुरझाये हुए चहरे पर एक खुशी, एक आहलाद एक चमक प्रदान करने का प्रयास किया है।

पर यह सबकुछ यों ही नहीं हो गया, इसके लिए मुझे तुमसे भी ज्यादा परिश्रम करना पडा है। मैंने अपने शरीर की बाती बना कर तुम्हारे जीवन के अंधकार में रोशनी बिखरने का प्रयत्न किया है, अपने प्राणों का दोहन कर उस अमृत जल से तुम्हारी बेल सींचने का और हरी-भरी बनाए रखने का प्रयास किया है, तिल-तिल कर अपने आप को जलाते हुए भी, तुम्हारे चहरे पर मुस्कराहट देने की कोशिश की है , और मेरा प्रयेक क्षण, जीवन का प्रत्येक चिन्तन इस कार्य के लिए समर्पित हुआ है, जिससे कि मेरे मानस के राजहंस अपनी जाति को पहचान कर सकें, अपने स्वरुप से परिचित हो सकें, अपने गोत्र से अभिभूत हो सकें और मेरे ह्रदय के इस मान सरोवर में गहराई के साथ दुबकी लगाकर लौटते समय मोती ले सकें।

... और यह हर बार हुआ है, और यह पिछले जन्मों से होता रहा है, क्योंकि मैं हर क्षण तुम्हारे लिए ही प्रयत्न किया है, मेरा जीवन अपने स्वयं के लिए या परिवार के लिए नहीं है, मेरा जीवन का उद्देश्य तो शिष्यों को पूर्णता देने का प्रयास है, और इसके लिए मैं सिद्धाश्रम जैसा आनन्ददायक और अनिर्वचनीय आश्रम छोडा और तुम्हारें इन मैले-कुचैले, गलियारों में आकर बैठा, जो वायुवेग से एक स्थान से दुसरे स्थान पर जाने के लिए सक्षम था, उसे तुम्हारें लिए अपने आप को एक छोटे से वाहन में बंद कर लिया, जिसका घर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड था, और किसी भी ग्रह या लोक में विचरण करता हुआ जो निरंतर आनंदयुक्त था, उसने तुम्हारे लिए अपने आप को एक छोटे से घर में आबद्ध, तुम्हारें लिए इस समाज से जूझा, आलोचनाएं सुनीं, गालियां खाई, और कई प्रकार के कुतर्कों का सामना किया, यह सब क्यों? क्या जरूरत थी यह सब सहन करने कि, झेलने की, भुगतने की?

और मैंने ऐसा किया, प्रत्येक क्षण इस बात के लिए कृत संकल्प था, और हूं कि मैं तुम्हें समाज में गर्व से सर तानकर खडा रहने की प्रेरणा दूं? मैं तुम्हें इस गन्दगी से भरे समाज में देवदूत बनाकर खडा कर सकूं, तुम्हारी आखों में एक चमक कर सकूं, तुम्हारे पंखों में इतनी ताकत दे सकूं, कि तुम आकाश से सुदूर ऊंचाई पर बिना थके पहुँच सको, और इस ब्रम्हत्व का, आनन्द ले सको, मैं तुम्हें उन इन्द्र धनुष के रंगों पर रंग बिखरने के लिए तैयार कर सकूं, जहां विस्तृत आकाश हो, जहां आनन्द की शीतल बयार हो, जहां पूर्णता और सिद्धियाँ जयमाला लिए तुम्हारें गले में डालने के लिए उद्यत और उत्सुक हों।

और यह सब बराबर हो रहा है, तुमने अपने आपको पहली बार पहचानने का प्रयत्न किया है, पहली बार यह अहसास किया है, कि तुम संसार में अकेले नहीं हो, कोई तुम्हारा रखवाला अवश्य है, जो तुम्हारें जीवन की बराबर चौकीदारी कर रहा है, कोई

ऐसा व्यक्तित्व तुम्हारे जीवन में अवश्य है, जिसे अपनी चिंताएं, परेशानियां और समस्याएं खुशी-खुशी देकर अपने आपको हल्का कर सकते हो, और मुझे तुम जो दे रहे हो, उससे मुझे प्रसन्नता है।

क्योंकि मैं तुम्हारें साथ हूं, क्योंकि तुम्हारें पांव मेरे पाव के साथ आगे बढ़ रहे है, क्योंकि मैं तुम्हारें जीवन का ध्यान रखने वाला, तुम्हारे जीवन को आल्हाद कारक बनाने वाला और तुम्हारें जीवन का प्रत्येक क्षण का हिसाब-किताब रखने वाला हूं।

तुम्हारे प्यार ने गुरुवर हमको तुमसे जोड़ा है

तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार के बल पर, हमने जग को छोड़ा है,

तुम्ही से ओ मेरे गुरुवर, ये रोशन चाँद सितारे हैं,
तुम्ही से चलती है सृष्टि, अजब तेरे नज़ारे हैं,
हम रहते थे जिस भ्रांति मे, उसे अब तुमने तोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है ।

तुम्ही तीरथ हो मंदिर हो, तुम्ही हो मेरी बंदगी,

तुम्ही धड़कन हमारी हो, तुम्ही हो मेरी ज़िंदगी,
तेरी करुणा ने ही गुरुवर, हमें खुशियों से जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार के बल पर, हमने जग को छोड़ा है ।

तेरा ही नाम ओ गुरुवर, सभी दुःखों को हरता है,
है केवल धन्य वो प्राणी, जो तेरा ध्यान धरता है,
तुम्हारे ज्ञान ने गुरुवर, सही दिशा में मोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार के बल पर, हमने जग को छोड़ा है ।

धरा पे तुमने यूं आकर, बड़ा उपकार किया है,
ईश्वर होकर भी तुमने, बापू का रूप लिया है,
तेरी लीला के वर्णन में, जो कहूं वो थोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार के बल पर, हमने जग को छोड़ा है ।

तेरे चरणों में ओ गुरुवर, झुके सारी ये सृष्टि है,
भले कहीं भी रहें हम पर, तुम्हारी प्रेम दृष्टि है,
तुम्हारे नाम की चादर को, अब तो हमने ओढ़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार के बल पर, हमने जग को छोड़ा है ।

तुम्हीं से मेरी हर खुशी, तुम्हीं तो मेरी दुनिया हो,
तुम्हीं जीने का हो मकसद, तुम्हीं मेरी तमन्ना हो,
हम रहते थे जिस भ्रांति में, उसे अब तुमने तोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है ।

तेरे रहमो करम से ही, इस जग में उजाला है,
भव से पार करता है, तेरा ये प्यार निराला है,
तुम्हारे प्यार की चादर को, अब तो हमने ओढ़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है ।

तुम्हीं धड़कन में मेरी हो, तुम्हीं नज़रों में समाए हो,
मेरा वीराना था जीवन, तुम्हीं बहार लाए हो,
तेरी कृपा ने ही हमको, सच्चे सुख से जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है ।

तुम्हीं सच्चे हो दाता जो, हर पल साथ निभाते हो,
जन्म-जन्म से भटके हम, तुम्हीं भव पार कराते हो,
मोह-माया के घेरे को, गुरुवर तुमने तोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है ।

तुम्हारे ज्ञान को पाकर, हमारे भाग्य जागे हैं,
तुम्हारे नाम को जपकर, दुर्गुण सारे भागे हैं,
तेरे दर पे आकर थम जाता, मन का चंचल घोड़ा है,
तुम्हारे प्यार ने गुरुवर, हमको तुमसे जोड़ा है,
तुम्हारे प्यार के बल पर, हमने जग को छोड़ा है ।

****